पटना

एक ऐतिहासिक अध्ययन

(ई.पू. लगभग 500 – 1947 ई.)

डा. ओम प्रकाश प्रसाद

हिन्दुस्तान में सूबा बिहार बहुत पुरानी और पवित्र जगह है। यहां के पुराने स्मारक, भवन खण्डहर, गिरे-गिराये पत्थर और इनपर खुदे अभिलेख, पुराने मन्दिर, मस्जिदें, खानकाहें और मकबरें जुबाने हाल से कह रहे हैं, "हम खुद वाक़याते गुज़स्ता (बीती हुई घटनाएं) के दफ्तर हैं बशर्ते कि कोई पढ़ने वाला हो) मगर अफसोस है कि बहुत कम लोग ऐसी आंखें और जुबानें रखते कि उन बेजुबानों की दिली बातें समझ लें और जिस तरह वो चाहते हैं उसी तरह उनके वाक़याते गुज़स्ता लिख डालें"।

जेनरल बुक एजेंसी
पटना-४

पटना

एक ऐतिहासिक अध्ययन

(ई० पू० लगभग 500-1947 ई०)

डॉ ओम प्रकाश प्रसाद
इतिहास विभाग
पटना विश्वविद्यालय, पटना-5.

जेनरल बुक एजेन्सी
प्रकाशक एवं पुस्तक बिक्रेता
अशोक राजपथ, चौहट्टा,
पटना-4

ऋचा

सोनू

सोनी

पौंकी

को सप्रेम भेंट

दो शब्द

पटना का नाम पहले अजीमाबाद और उससे भी पहले पाटलिपुत्र था। ई० पू० 600 के आसपास यह इलाका आर्य संस्कृति से प्रभावित हुआ। जैन धर्म एवं बौद्ध-धर्म को अमर बनाने में पाटलिपुत्र की भूमिका अद्वितीय रही। प्रथम भारतीय मौर्य साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र थी। मौर्य राजवंश का संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य ने इस नगर को सुन्दर, धनी और विश्वप्रसिद्ध बना दिया। इस नगर की मान-प्रतिष्ठा कुषाणों के काल तक बनी रही। शेरशाह के समय पटना के नाम से पाटलिपुत्र एक प्रशासनिक केन्द्र हो गया। अजीमुश्शान (मुगल सम्राट् औरंगजेब का पोता) के काल में अजीमाबाद और पटना के नाम से इस नगर की ख्याति बनी रही। अंग्रेजों के विरुद्ध आजादी की लड़ाई में पटना की भूमिका अद्वितीय रही।

पाटलिपुत्र की गौरवमय गाथा सुनकर या पढ़कर जाना जा सकता है लेकिन इस काल के प्राप्त अवशेष मुश्किल से इसे विश्वप्रसिद्ध नगर प्रमाणित कर पाते हैं। अजीमाबाद के रूप में इस नगर को आधुनिक पटना सिटी में आज देखा जा सकता है। अंग्रेज कालीन पटना का पूर्वी सीमा पटना कॉलेज के पास का इलाका रहा। पश्चिम में यह गांधी मैदान और सचिवालय तक फैला। आबादी बढ़ी और पटना की ख्याति पश्चिमी पटना के कारण ही है जहाँ सरकारी कार्यालय, मंत्रियों के निवास स्थान और उच्चाधिकारियों तथा व्यापारियों आदि के आवास हैं।

पटना इतिहासकारों का जमघट रहा। यहाँ के कई इतिहासकारों को आज भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की ख्याति मिली हुई है। पटना पर लिखने के लिये सामग्रियों की कमी नहीं है। बिहार रिसर्च सोसायटी, के० पी० जायसवाल रिसर्च इन्सच्यूट, पुराविद् परिषद्, बिहार इतिहास परिषद्, ए० एन० सिन्हा रिसर्च इन्सच्यूट, केन्द्रीय एवं प्रांतीय पुरातत्व विभाग, अभिलेखागार जैसी सरकारी एवं अर्द्धसरकारी संस्थाओं द्वारा विशाल सामग्रियाँ प्रकाशित की गई हैं। हाल ही में जनरल एस० के० सिन्हा द्वारा लिखित पटना पर एक पुस्तक हिन्दी में प्रकाशित की गई। प्रोफेसर कयामुद्दीन अहमद द्वारा सम्पादित पटना पर एक पुस्तक अंग्रेजी में प्रकाशित हुई है। हाल में एक पुस्तक बंगला में छपी है। रामकृष्णमिशन, पटना द्वारा सैकड़ों लेख बिहार एवं पटना पर प्रकाशित किये जा चुके हैं। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त खुदा बख्श लाइब्रेरी, पटना द्वारा भी पटना से सम्बन्धित बहुमूल्य

सामग्रियाँ प्रकाशित हो चुकी है। कई अंग्रेज विद्वानों द्वारा पटना पर शोध लेख लिखे गये। अनेक पुस्तकें उर्दू भाषा में प्रकाशित हैं।

उपर्युक्त प्रकाशित सभी शोध कार्यों को पढ़ना, समझना और समझा देना सम्भवतः एक व्यक्ति के लिये सम्भव नहीं। इन ऐतिहासिक तथ्यों को ध्यान में रखते हुए सर्वाधिक प्रचलित भारतीय हिन्दी भाषा में अभी तक कोई ऐसी पुस्तक नहीं लिखी जा सकी है जो सामान्य नागरिकों को पटना की कहानी समझा देने में सक्षम हो।

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत पुस्तक तैयार की गई है। इस पुस्तक में पाटलिपुत्र से पटना तक के लम्बे ऐतिहासिक सफर पर संक्षेप और साधारण शब्दों में प्रकाश डाला गया है। आधुनिक पटना सिटी से लेकर पश्चिमी पटना तक में उपलब्ध प्रमुख मुहल्लों के नामकरण, नगर योजना, व्यापारी, वेश्याएँ, शिक्षा, शैक्षणिक केन्द्र, समाचार पत्र, धर्म, अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष एवं हिन्दू-मुस्लिम एकता आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

मेसर्स जेनरल बुक एजेन्सी के संस्थापक श्री गुलाब मिश्र से लेखक विशेष रूप से अनुगृहित है जिन्होंने इस पुस्तक को लिखने के लिये प्रोत्साहित किया। अशोक कुमार मिश्र एवं विजय कुमार मिश्र (आई० ए० परीक्षार्थी, पटना विश्वविद्यालय) ने इस पुस्तक को जल्द-से-जल्द छापने के लिये जो परिश्रम किया इसके लिये वे दोनों धन्यवाद के पात्र हैं।

पटना

2-10-89

लेखक

विषय-सूची

दो शब्द

1. पूर्व मौर्यकालीन पाटलिपुत्र :

भूमिका—1; पाटलिपुत्र का नामकरण—2; नगर-निर्माण—3-4; ई० पू० पांचवीं-चौथी शताब्दी में पाटलिपुत्र—5-7.

2. मौर्यकालीन पाटलिपुत्र :

नगर-योजना—8; अर्थशास्त्र में पाटलिपुत्र—9-12; पाटलिपुत्र की सड़कें—12-18; पाटलिपुत्र नगर का वर्णन—14-16; पाटलिपुत्र—चन्द्रगुप्त मौर्य से अशोक तक—16-24; पाटलिपुत्र के अधिकारी—24-27; वैश्य तथा शूद्र—27-28; सौन्दर्य-प्रसाधन—28-29; वस्त्र एवं आभूषण—29-36.

शुंग कुषाण एवं गुप्तकालीन पाटलिपुत्र :

शुंगों की राजधानी के रूप में पाटलिपुत्र—37-38; कुषाणों का पाटलिपुत्र—39-41; गुप्तकालीन पाटलिपुत्र—41-45; ह्वेनत्सांग और पाटलिपुत्र—45-4 ; आर्यभट्ट—47-49; पातंजलि—49; पाटलिपुत्र का पतन—49-51.

4. अजीमाबाद की पृष्ठभूमि :

शेरशाह और पाटलिपुत्र—53; अजीमाबाद की विशेषताएँ—53-54; अकबर के काल में अजीमाबाद—54-56; अकाल—56-58; अजीमाबाद में सिक्ख—58; अजीमाबाद का नामकरण—58; अजीमाबाद के मुहल्ले एवं भवनें—59-61; अजीमाबाद का प्रशासन—61-63; सड़कें—63; वेश्याएँ—64-66; प्रमुख तवायफें—66-70.

5 पटना :

अंग्रेज और डच कम्पनियां—71-72; पटना नवाबों के नियंत्रण में—71-73; पटना का भूगोल—73; पटना के मुहल्ले एवं

मकान—73-76; पटना का प्रशासन एवं शिक्षा—76-77; स्त्री-शिक्षा—77; समाज—78-79; आर्थिक स्थिति—79-80; पत्र-पत्रिकाएँ—80-81; पटना कॉलेज—81-82.

6. 19वीं शताब्दी में पटना का भूगोल :

पटना की नदियाँ—82-86; बीमारी और इलाज 86-87.

7. आधुनिक चित्रकला :

उत्तर मुगलकालीन चित्र—88-89; अंग्रेजकालीन चित्रकला-89-92.

8. वहाबी आन्दोलन :

मुसलमानों की अंग्रेज-विरोधी गतिविधियाँ—93-95; वहाबी आन्दोलन का संगठन—95-96; विलायत अली—96-97.

इनायत अली और अंग्रेजों से युद्ध 97-101 वहाबी आन्दोलन की असफलता 101-102

9. पटना और स्वतंत्रता आन्दोलन :

1857 और पटना 103, 1913 से 1923 के बीच का पटना 101-106
1930 में पटना 106-107, 1931 से 1941 के बीच का पटना 107-111,
1942 में पटना 111-115, 1943 में पटना 115-117 और 1944 से 1947 के बीच का पटना 117-120।

10. पटना के कुछ नामों की सार्थकता एवं स्मारकें :

बलन्देज का पुल, गुलजारबाग प्रेस, मदरसा मुहल्ला, मालसलामी, नगर-मुहल्ला और बागजफ खां मुहल्ला 121-122, महाराजा घाट और रोजा मस्जिद, चिहल सुतुन, नेपाल कोठी और तख्त-ए-हरमंदिर—122-123, बड़ी पहाड़ी और छोटी पहाड़ी, अगम कुंआ, मठनिधि, बाकरगंज, गोलकपुर, भिखना पहाड़ी, रमना रोड, पत्थिहोर, बादशाहीगज, त्रिपोलिया, मीर शिकार टोह, गुलजारबाग, छज्जू

बाग, खजांची रोड, पाटलिपुत्र और पटना—123-127 ननमुहिया, मखीनियाँ कुआँ, आर्यकुमार रोड, मछुआ टोली, नया टोला, दोरबी गली, ठठेरी मुहल्ला, दरियापुर गोला, डाक बंगला चौक, बी० एम० दास रोड, भट्टाचार्या रोड, मुरादपुर, नौजर कटरा और कंकड़बाग—127-130, गोलघर, मिर्जामुरद का मकबरा, शाह अर्जान की दरगाह, पटनदेवी का मंदिर, पादरी की हवेली, भाउगंज, टकसाल, सादमान का मस्जिद, बाग-ए-मीर अफजल का कब्र, दाता पीरबहोर का कब्र,, ईदगाह, मिर्जा मासूम का मस्जिद, हुसैनसाह का मस्जिद, बेगू हज्जाम का मस्जिद फकरूदुल्ला का मस्जिद, हाजीतातर का मस्जिद, शाईस्ता खां का कटरा मस्जिद, नजीर ख्वाजा अम्बेर का मस्जिद, बबुआगंज का मस्जिद और शेरशाह का मकबरा—130-134, मालाखुदी लेन, रामसहाय लेन, सुमति पथ, लगरटोली, बोरिंग कनाल रोड, पाटलिपुत्र मुहल्ला, कम्पनी बाग, बाबा भीखम दास और उनका लगरखाना—134-136।

———

अध्याय—१

पूर्व मौर्यकालीन पाटलिपुत्र

भूमिका

पाटलिपुत्र, कुसुमपुर, पुष्पपुर, पुष्पभद्र, पुष्पाभय, पोलिमबोथा या पेलिबोथा, (ग्रीक), पा-लोन-तो यो पो-लियेन-फ् (चीनी) अजीमाबाद आदि नामों से कल तक जाना जाने वाला नगर आज पटना के नाम और बिहार[1] प्रान्त की राजधानी के रूप में जाना जाता है। पटना के प्राचीन अवशेष का अधिकांश हिस्सा सम्भवतः नदी की गोद में जा मिला है। मौर्यकालीन पाटलिपुत्र की सही जानकारी खुदाई से प्राप्त सामग्रियों के आधार पर निश्चित रूप से करना आज भी मुश्किल-सा है। आधुनिक पटना के किस हिस्से में सम्राट् अशोक मौर्य की राजधानी स्थित थी, यह नहीं बताया जा सकता। यहाँ कोई ऐसी वस्तु नहीं मिली है जिससे अशोक द्वारा पाटलिपुत्र को राजधानी बना कर अंत तक शासन करने की निश्चित जानकारी प्राप्त की जा सके। देशी-विदेशी लिखित स्रोतों के आधार पर पाटलिपुत्र की लम्बी और प्राचीन इतिहास की तस्वीर बनाने का प्रयास किया गया। इतिहास की इस तस्वीर में वास्तविकता लाने के लिए थोड़ी-बहुत सहायता पुरातात्विक अवशेषों से भी विद्वानों ने ली है। इतिहासकार रामशरण शर्मा एवं रमेन्द्रनाथ नंदी का मत है कि आधुनिक कंकड़बाग के पूरब में पाटलिपुत्र स्थित था।

---

१. बिहार प्रांत का नामकरण बिहारशरीफ से जुड़ा है जिसका प्रथम जिक्र मिन्हाज-उ सिराज द्वारा रचित तबकात-ए-नासरी (1203-04) में मिलता है। आधुनिक पटना के पूरब में स्थित बिहारशरीफ जिसका पहले नाम उदन्तपुरी था, के नाम पर इस प्रांत का नाम बिहार पड़ा। वहाँ पहले अनेक बौद्ध विहार थे और यह क्षेत्र सालो भर हरा-भरा रहता था। तुर्क-अफगान काल के मुस्लिम लेखकों ने इस उदन्तपुरी को बिहार नाम दिया। बिहार शब्द फारसी के बहार से बना जिसका अर्थ वसंत होता है! बिहार जब सूफी संतों का स्थल हुआ तो 12वीं शताब्दी में उसका नाम बिहारशरीफ हो गया।

पाटलिपुत्र

पाटलिपुत्र ('पाटलि' शब्द **पाटल** अर्थात् गुलाब पद से बना है।) को **महावस्तु** में पुष्पावती, **दीघनिकाय** में पाटलिपुत्त, **रामायण** में कौशाम्बी, **आवश्यकचूर्णि** में पाडलिपुत्त, **युगपुराण** में पुष्पपुर, **वायुपुराण** में कुसुमपुर (कुसुम 'पाटल' या 'ढाक' का पर्याय है।), **सेलेक्ट इन्सक्रिप्शन्स** (डी. सी. सरकार) में पुष्पाह्वयपुर, अभिलेख (**एपिग्राफिया इण्डिका**; xvii, 310) में श्रीनगर, **दशकुमारचरित्** में पुष्पपुरी और मेगास्थनीज ने इसे पोलिबोथ्र, टालेमी ने पालिमबोथ्र, बील (**रेकर्ड्स ऑफ द वेस्टर्न वर्ल्ड**) ने प-लियेन-फु तथा व्हेनत्सांग ने पा-लीन-तौ' कहा है।

इस नगर के नामकरण के बारे में व्हेनत्सांग बताता है कि कुछ युवा छात्रों ने वहाँ पाटलिवृक्ष के नीचे अपने एक उदास मित्र का मिथ्या विवाह पाटलि अर्थात् गुलाब के पौधे से कर दिया। इस तना का स्त्री नाम होने के कारण इसे उसकी काल्पनिक भार्या बनाया गया। विवाहोपरान्त शादीशुदा मित्र को छोड़ शेष नवयुवक छात्र अपने-अपने घर चले गए। वह पाटलिवृक्ष के नीचे रुक गया। शाम ढलने पर इस वृक्ष का देवता अवतरित हुआ। उसने इसे एक अति सुन्दर कन्या भार्या के रूप में प्रदान किया। कुछ दिनों के पश्चात् इस कन्या से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसके लिए पाटलि वृक्ष ने एक महल का निर्माण किया[1]। यही भवन भावी नगर का केन्द्रबिन्दु बना। इस भवन के चारो ओर नगर के बसने के कारण इसका नाम पाटलिपुत्र पड़ गया। व्हेनत्सांग बताता है कि इस नगर के राजभवन के प्राङ्गण में बहुत-से पुष्प खिले हुए थे और इसीलिए 'कुसुमपुर' के नाम से भी यह नगर प्रसिद्ध हुआ।

जैन साहित्य **तीर्थकल्प** के अनुसार कुणीक अजातशत्रु की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र उदायी ने अपने पिता की मृत्यु के शोक के कारण अपनी राजधानी को चुपा से अन्यत्र ले जाने का विचार किया और शकुन बताने वालों को नई राजधानी बनाने के लिए उपयुक्त स्थान की खोज में भेजा। ये लोग खोजते-खोजते गंगा-तट के एक स्थान पर पहुँचे। वहाँ पुष्पों से लदा एक पाटल वृक्ष (ढाक या किंशुक) देखा, जिसपर एक नीलकंठ बैठा कीड़े खा रहा था। इस दृश्य को उन्होंने शुभ शकुन माना और वहाँ पर मगध

1. **हुएनसांग का भारत-भ्रमण**, अनुवादक—ठाकुर प्रसाद शर्म्मा, प्रयाग, 1921, पृ० 370-71

की नई राजधानी बनाने के लिए राजा को मंत्रणा दी। फलस्वरूप जो नया उदायी ने बसाया, उसका नाम पाटलिपुत्र या कुसुमपुर रखा गया। उदायी ने यहाँ श्री नेमिका चैत्य बनवाया और स्वयं जैन धर्म में दीक्षित हो गया।

नगर-निर्माण

जिस समय गौतम बुद्ध पाटलिगाम में थे उसी समय मगधनरेश अजातशत्रु वैदेहिपुत्र के दो महामात्य सुनीध (सुनीथ) और वस्सकार (वर्षकार) गौतमबुद्ध से फिर मिलने आये। अजातशत्रु उस समय वज्जियों को जीतने के लिये नगर बसा रहा था। पाटलिग्राम के जिस मार्ग से बुद्ध निकले उसका नाम उनके सम्मान में मगधराज के उक्त दो महामात्यों द्वारा गौतम द्वार रखा गया और जिस घाट से उन्होंने गंगा को पार किया, उसका गौतम तीर्थ। गौतम बुद्ध के समय पाटलिपुत्त के उत्तर में लिच्छवियों का वज्जिगणराज्य और दक्षिण में मगध का राज्य था। गौतम बुद्ध जब अंतिम-बार मगध आये तो गंगा और शोण (सोन) नदियों के संगम के पास 'पाटलि' नामक ग्राम बसा था, जो पाटल या ढाक के वृक्षों से आच्छादित था। मगधराज अजातशत्रु ने लिच्छवी गणराज्य का अंत करने के बाद एक मिट्टी का दुर्ग पाटलिग्राम के पास बनवाया था, जिससे लिच्छवियों के आक्रमण से मगध की रक्षा हो सके। अश्वघोष द्वारा रचित बुद्धचरित के अनुसार वह दुर्ग या किला मगधनरेश के मंत्री वर्षकार ने बनवाया था। अजातशत्रु के पुत्र उदयिन या उदायिभद्र ने इसी स्थान पर पाटलिपुत्र की नींव डाली।

पाली ग्रन्थों के अनुसार भी नगर का निर्माण सुनिधि और वस्सकार (वर्षकार) नामक मंत्रियों ने करवाया था। पाली अनुश्रुति के अनुसार गौतम बुद्ध ने पाटलि के पास कई बार राजगृह और वैशाली के बीच आते-जाते गंगा को पार किया था और इस ग्राम की बढ़ती हुई सीमाओं को देखकर भविष्यवाणी की थी कि यह भविष्य में एक महान् नगर बन जाएगा। उस काल में श्रावस्ती प्राचीन काल से चली आती एक महत्त्वपूर्ण व्यापारिक नगरी थी। वहाँ से एक महाजनपथ वैशाली आता था जो पूरब की ओर अनेक नगरों से होकर ताम्रलिप्ति तक चला जाता था। वैशाली से इसकी एक शाखा दक्षिण की ओर निकलती थी, जिसमें अनेक पड़ाव थे। इनमें राजगृह से कुशीनरा तक की यात्रा करते समय भगवान बुद्ध ठहरे थे। वे राजगृह से अबंलट्ठिक और नालन्दा होते हुए पाटलिग्राम आए थे तथा

वहाँ गंगा पार कर कोटिग्राम और नादिका होते हुए वैशाली पहुँचे थे। इस प्रकार उस काल में महाजनपथ पानीपत में आकर दो शाखाओं में बँट जाता था। इसकी एक शाखा गंगा के दाहिने किनारे से प्रयाग में इसे पारकर बनारस तक आती थी। प्रयाग के पास कौशाम्बी से एक रास्ता साकेत होकर श्रावस्ती चला जाता था। लेकिन प्रधान पथ उत्तर-पूरब की ओर चलते हुए उक्कचेल से वैशाली पहुँचता था। वैशाली से उत्तर की ओर यह रास्ता कपिलवस्तु तक चला जाता था। वैशाली से दक्षिण की ओर यह रास्ता पाटलिग्राम, उरुवेल और गोरथगिरि (बराबर की पहाड़ी) होता हुआ राजगृह चला जाता था। अजातशत्रु तथा उसके वंशजों के लिए पाटलिपुत्र की स्थिति महत्त्वपूर्ण थी। अब तक मगध की राजधानी राजगृह में थी किन्तु अजातशत्रु द्वारा वैशाली (उत्तर बिहार) तथा काशी की विजय के पश्चात् मगध के राज्य का विस्तार भी काफी बढ़ गया था। अजातशत्रु के समय मगध के तीन शत्रु थे। कोसल के साथ उसकी दुश्मनी थी। लिच्छवी भी गंगा को पारकर मगध क्षेत्र में अपने सिपाही भेज देते थे। अजातशत्रु की लिच्छवियों से दुश्मनी का पता 'महापरिनिब्बानसुत्तन्त' से भी चलता है। वह वज्जियों पर धावा बोलना चाहता था। इस उद्देश्य से उसने पाटलिग्राम के दक्षिण में एक किला बनवाया। शायद यही ग्राम मगध एवं वज्जियों की सीमा पर था। इस घटना के तीन वर्ष बाद ही अजातशत्रु के षड्यंत्रों से वैशाली का पतन हुआ। अजातशत्रु का तीसराप्रति॰ द्वन्द्वी अवन्ती का चण्डप्रद्योत था तथा वह राजगृह पर धावा बोलना चाहता था। इसप्रकार बुद्ध के समयमगध और अवन्ती के राज्य उत्तर भारतमें अपना सिक्का जमाना चाहते थे। वैशाली के पतन के फलस्वरूप अजातशत्रु के लिए यह काम आसान हो गया और मगध उत्तर भारत का एक शक्तिशाली साम्राज्य बन गया। अजातशत्रु के पुत्र और उत्तराधिकारी *उदायीभद्र* ने गंगा के दक्षिण में कुसुमपुर अथवा पाटलिपुत्र नगर बसाया। शीघ्र ही यह नगर व्यापार और राजनीति का केन्द्र बन गया और इसी कारण अब राजगृह से अधिक केन्द्रीय स्थान पर राजधानी बनाना आवश्यक हो गया था।

वायुपुराण के अनुसार कुसुमपुर या पाटलिपुत्र को उदायीभद्र या उदयी ने अपने राज्याभिषेक के चतुर्थ वर्ष में बसाया था। यह तथ्य "गार्गी संहिता" की साक्षी से भी पुष्ट होता है। 'परिशिष्टपर्वन्' (जैकोबी द्वारा संपादित) के अनुसार भी इस नगर की नींव उदायी (उदयी) ने डाली थी। पाटलिपुत्र का महत्त्व शोण-गंगा के संगम के कोण में बसा होने के कारण

सुरक्षा और व्यापार, दोनों ही दृष्टियों से शीघ्रता से बढ़ता गया और नगर का क्षेत्रफल भी लगभग 20 वर्ग मील तक विस्तृत हो गया। श्री चिं० वि० वैद्य के अनुसार '**महाभारत**' के परवर्ती संस्करण के समय से पूर्व ही पाटलिपुत्र की स्थापना हो गई थी, किन्तु इस नगर का नामोल्लेख इस महाकाव्य में नहीं है जबकि निकटवर्ती राजगृह या गिरिव्रज और गया आदि का वर्णन कई स्थानों पर आया है।

ई० पू० पांचवीं चौथी शताब्दी में पाटलिपुत्र

'महापरिनिब्बाणसुत्त' की 'अट्ठकथा' से पता चलता है कि पाटलिपुत्र के समीप बहुमूल्य माल उतरता था, जिसकी चुंगी पर इन दोनों राज्यों का अक्सर झगड़ा चलता रहता था। मगधराज अजातशत्रु इसीलिये वज्जियों पर अभियान करना चाहता था। गौतम बुद्ध के परिनिर्वाण के कुछ पूर्व उसे इस सम्बन्ध में काफी चिन्तित देखते हैं और 'महापरिनिब्बाणसुत्त' से हमें सूचना मिलती है कि इसी उद्देश्य के लिए उसके दो ब्राह्मण मंत्री सुनीध और वस्सकार पाटलिपुत्र नगर को बसा रहे थे। भगवान् बुद्ध के जीवन काल में तो नहीं, परन्तु उसके बाद वज्जिय गणतंत्र को कुछ सीमित स्वतन्त्रता रखते हुए मगध राज्य में सम्मिलित होना पड़ा। मगध राज्य की पश्चिमी सीमा संभवतः शोण (सोन) नदी थी।

उस समय गौतम बुद्ध ने पाटलिग्राम की भावी उन्नति की भविष्यवाणी करते हुए आनन्द से कहा था कि "भविष्य में यह नगर वाणिज्य और व्यवसाय का भारी केन्द्र होगा। आनन्द! जितने भी आर्य-आयतन (आर्यों के निवास) हैं, जितने भी वणिक्-पथ (व्यापार-मार्ग) हैं, उनमें यह पाटलिपुत्र, पुट-भेदन (माल की गांठ जहां खोली जाय) अग्र (प्रधान) नगर होगा।" इसी समय पाटलिग्राम में 'गौतम-द्वार' और 'गौतम घाट' की स्थापना हुई थी। यह हम 'महापरिनिब्बाणसुत्त' में देखते हैं। उपर्युक्त सब बातों की सूचना हमें उदान में भी मिलती है। गौतम बुद्ध के जीवन-काल में पाटलिग्राम के लोगों का एक आवसथागार (अतिथिशाला या विश्रामगृह) था, जहां भगवान् ने अपनी अन्तिम यात्रा में सन्ध्या समय गृहस्थ लोगों को शील के सम्बन्ध में उपदेश दिया था। गौतम बुद्ध के जीवन-काल में ही पाटलिपुत्र में 'कुक्कुटाराम' नामक विहार का भी निर्माण हो गया था। आचार्य बुद्धघोष का कहना है कि कुक्कुट सेट्ठि ने इसे बनवाया था। इसी नाम का एक विहार कौशाम्बी में भी था। यह हम वत्स राज्य के प्रसंग में देखेंगे। 'मज्झिमनिकाय' के 'अट्ठकनागर-सुत्तन्त' में पाटलिपुत्र के कुक्कुटाराम का उल्लेख है। यहां अट्ठकनागर का दशम नामक गृहपति आनन्द का पता

लगाने आया था। यही बात 'अंगुत्तर-निकाय' में भी वर्णित है। इसी आराम में आयुष्मान् उदयन की प्रेरणा से 'घोटमुख' नामक ब्राह्मण ने बुद्धपरिनिर्वाण के कुछ समय बाद एक उपस्थान-शाला (सभा-गृह) बनवाई थी, जो उसी के नाम पर "घोटमुखी उपस्थान-शाला" कहलाई। पाटलिपुत्र के कुक्कुटाराम में आयुष्मान् आनन्द और भद्र को धार्मिक संलाप करते हुए हम संयुत्त-निकाय के प्रथम, द्वितिय तथा ततिय कुक्कुटाराम-सुत्त में तथा इसी निकाय के सील-सुत्त, ठिति-सुत्त तथा परिहान-सुत्त में देखते हैं। 'अंगुत्तर-निकाय' के वर्णनानुसार स्थविर नारद ने भी पाटलिपुत्र के कुक्कुटाराम में विहार किया था। वर्त्तमान 'कुकिहार" नामक गाँव को, जो "तत्पों" से करीब 10 मील दूर है, "कुक्कुटाराम" की स्थिति माना जा सकता है। समन्तपासादिका में तृतीय संगीति के विवरण से मालूम पड़ता है कि पाटलिपुत्र के दक्षिण-द्वार से पूर्व द्वार को जाते हुए रास्ते में राजांगण था। इस अट्ठकथा से हमें यह सूचना मिलती है कि पाटलिपुत्र के चारों दरवाजों की चुंगी से राजा को 4 लाख कहापण की आय होती थी। संभवतः अजातशत्रु के पुत्र और उत्तराधिकारी उदायि भद्र (उदय भद्र) के राज्य काल में अथवा निश्चित रूप से शिशुनाग के पुत्र कालाशोक के समय में पाटलिपुत्र ने राजगृह के स्थान पर मगध की राजधानी का पद ले लिया था। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में 'पाटलिग्राम' का 'पाटलिपुत्र' नाम प्रचलित हो गया था और उसका एक नाम 'कुसुमपुर' भी था, जैसा कि 'थेरीगाथा' की इस पंक्ति से प्रकट होता है—'नगरम्हि कुसुमनामे पाटलिपत्तम्हि पठविया।"

बुद्ध-काल में पाटलिपुत्र उस मार्ग पर पड़ता था, जो राजगृह से श्रावस्ती को जाता था। पाटलिपुत्र से इस मार्ग पर बढ़ने पर गंगा को पार करना पड़ता था। इसी प्रकार पाटलिपुत्र उस मार्ग पर भी एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव था, जो गान्धार राष्ट्र की राजधानी तक्षशिला से चल कर क्रमशः इन्दपत्त, मथुरा, वेरंजा, सोरेट्य, कण्णाकुज्ज, पयागपतिट्ठान, बाराणसी, पाटलिपुत्र और राजगृह होता हुआ ताम्रलिप्ति तक जाता था। पाटलिपुत्र से गंगा नदी के द्वारा भी ताम्रलिप्ति तक आवागमन होता था तथा माल का परिवहन भी होता था। पाटलिपुत्र से गंगा नदी के मार्ग द्वारा ही भिक्षुणी संघमित्रा अशोक-काल में ताम्रलिप्ति गयी थी, जहाँ से लंका के लिये समुद्री मार्ग द्वारा नावें मिलती थीं। देवानां पिय तिस्स के दूत भी ताम्रलिप्ति से पाटलिपुत्र तक गंगा के मार्ग से नावों में बैठकर आये थे और उसी मार्ग से लौटे थे। पाटलिपुत्र से स्थलीय मार्ग भी

ताम्रलिप्ति तक जाता था। गंगा नदी के द्वारा वाराणसी और सहजाति तक पाटलिपुत्र के व्यापारियों तथा यात्रियों का आवागमन होता था। वैशालिक भिक्षु नावों में बैठकर पाटलिपुत्र होते हुए सहजाति तक गये थे। इन सब दृष्टियों से भगवान् बुद्ध की पाटलिपुत्र के सम्बन्ध में की गई भविष्यवाणी सर्वथा उपयुक्त थी और उत्तरकालीन इतिहास ने उसे सत्य प्रमाणित किया था।

वज्जि संघ का प्रदेश गंगा के उत्तर में नेपाल की तराई तक फैला हुआ था। महापंडित राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार उसमें वर्तमान बिहार राज्य के मुजफ्फरपुर और चम्पारण के जिले तथा दरभंगा और सारण के कुछ भाग सम्मिलित थे। उसके पूर्व सम्भवतः बाहुमति (बागमती) नदी बहती थी और पश्चिम में मही (गण्डक)। इस प्रकार उसकी सीमा मल्ल गणतंत्र और मगध राज्य से मिलती थी। मल्लों के वह पूर्व या पूर्व-दक्षिण में था और मगध राज्य के उत्तर में। जैसा कि हम मगध राज्य का विवेचना करते देख चुके हैं, गंगा नदी मगध राज्य और वज्जियों की सीमा पर थी और पाटलिपुत्र के समीप जो बहुमूल्य माल उतरता था, उसकी चुंगी के सम्बन्ध में दोनों राज्यों में मन-मुटाव चल रहा था और अजातशत्रु एवं उसके मंत्री सुनीध तथा वस्सकार वज्जियों को उखाड़ फेंकने की योजना बनाते हुए पाटलिपुत्र नगर को बसा रहे थे। भगवान् बुद्ध की दृष्टि इस सम्पूर्ण घटना-चक्र की ओर बड़ी निष्पक्ष, संतुलित और तटस्थ थी। वे निस्सन्देह गणतंत्र शासन-प्रणाली के प्रशंसक थे और उसकी सफलता चाहते थे। इसीलिये उन्होंने एक बार वज्जियों को अपनी उचित मर्यादाओं के पालन करने का उपदेश दिया था। बाद में यही बात उन्होंने स्वयं महामात्य वस्सकार के सामने दुहराई थी और उसके मुख पर ही कहा था कि "जब तक वज्जी लोग सात अपरिहाणीय धर्मों का पालन करते रहेंगे, उनकी हानि नहीं होने का! 'संयुत्तनिकाय' में भी बुद्ध को लिच्छवियों के कठोर संयमपूर्ण जीवन, उद्योग-शीलता और जागरूकता की प्रशंसा करते हुए देखते हैं और इस बात के आश्वासन के साथ कि जब तक लिच्छवि इस प्रकार जीवन-यापन करते रहेंगे, राजा अजातशत्रु उनका कुछ बिगाड़ नहीं पाएगा। परन्तु साथ ही हम बुद्ध की इस आशंका को भी प्रत्यक्ष होते देखते हैं कि लिच्छवि विलासप्रिय होते जा रहे थे और उनका पतन सन्निकट था और वस्तुतः हुआ भी ऐसा ही।

●

मौर्यकालीन पाटलिपुत्र

ई० पू० लगभग 322 में मौर्य साम्राज्य के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य ने पाटलिपुत्र को अपनी राजधानी बनायी। चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में यहाँ निर्मित अनेक राजभवनों में पत्थर के अलंकृत टुकड़ों का प्रयोग प्रथम बार हुआ। साम्राज्य की स्थापना करनेवाला वह प्रथम सम्राट् था। वह प्रथम भारतीय सम्राट् था जिसने अनार्यों, चोर, लूटेरों एवं जंगली जातियों को सेना में बहाल किया। वह प्रथम भारतीय सम्राट् था जिसने कन्याओं को अपना निजी संरक्षक बनाया। गुप्तचर विभाग के अनेक पदों एवं विदेशी मेहमानों का स्वागत करने के लिए स्त्रियां नियुक्त की गईं। विदेशी मेहमानों से पाटलिपुत्र नगर भरा रहने लगा।

नगर-योजना

यूनानी राजदूत के रूप में चन्द्रगुप्त मौर्य की राजसभा में मेगास्थनीज आया था। अपने यात्रा-विवरण में पाटलिपुत्र नगर की बनावट के सम्बन्ध में वह बतलाता है कि यह नगर सुरक्षा की दृष्टि से चारों तरफ से दीवारों से घिरा था। इस प्राचीर की रचना बाढ़, खतरनाक जानवरों, डाकुओं, और आक्रमणकारियों से बचने के लिए किया गया था। प्राचीर के बाद चारों ओर से एक खाई थी, जिसकी चौड़ाई सौ फीट थी और जो साठ फुट गहरी थी। इस नगर में चौंसठ द्वार थे। चारों ओर से घिरे प्राचीर पर लगभग 560 गुम्बज थे। सम्भवतः प्रत्येक गुम्बज में एक छिद्र होता था, जिसके पास तीर चलानेवाले बैठकर नगर की रक्षा दुश्मनों से किया करते थे। नगर में प्रवेश करनेवाले नये व्यक्ति का परिचय-पत्र देखा जाता था। नगर में एक मुख्य द्वार था जिसके दोनों ओर शस्त्रों से सज्जित सैनिक रहा करते थे। सभी आगन्तुक परिचय-पत्र नहीं दिखाते थे। बातचीत के क्रम में पहरेदारों को जो संतुष्ट नहीं करते, उन्हें नगर में प्रवेश की अनुमति नहीं मिलती थी। मुख्य द्वारपाल को किलेदार कहा जाता था। उपर्युक्त तथ्यों का विस्तृत वर्णन मेक्रिण्डल द्वारा रचित पुस्तक **एँशियन्ट इण्डिया एेज डिस्क्राइब्ड बाय मेगास्थनीज एण्ड एरियन** (कलकत्ता, 1960, पृ० 67-150), थामस वाटर्स, **एँशियन्ट इण्डिया एेज डिस्क्राइब्ड बाय मेगास्थनीज** (पृ० 95) **ए रिपोर्ट ऑन कुम्हरार एक्स्का-वेकेशंस,** 1951-55 (के० पी० जायसवाल रिसर्च इंस्टीच्यूट, पटना, 1959, पृ०8) **क्लासिकल लिटरेचर** (पृ० 42); राहुल सांकृत्यायन, **बुद्धाचार्य** (बनारस, 1952 पृ० 421); नारायण सिंह कोटला: **इण्डिया एेज डिस्क्रा-**

इण्ड बाय मेगास्थनीज (दिल्ली, 1878, पृ० 62) आदि ग्रन्थों में हुआ है।

कौटिल्य के **अर्थशास्त्र** (अनुवादक: रामशास्त्री, पृ० 60-68) में पाटलिपुत्र की नगर-योजना पर प्रकाश डाला गया है। प्राचीरों से घिरे नगर के निर्माण के सम्बन्ध में निश्चित समय को वह बतलाता है। प्राचीरों के बाद खाइयों की बनावट पर इस पुस्तक ने प्रकाश डाला है। दुर्ग से बाहर आने के लिए फाटक बने होते थे। कौटिल्य के विवरणों का समर्थन मेगास्थनीज ने भी किया है। एक चीनी अधिकारी (222 ई०-280 ई०) के विवरण, जो भारत से लौटे एक व्यक्ति के द्वारा बताया गया, के अध्ययन से पता चलता है कि मौर्यसम्राट् अशोक ने इस नगर की बनावट में कई प्रकार का परिवर्तन किया था। इस चीनी विवरण के अनुसार नगर के चारों तरफ की खाई पानी से भरी थी और अधिक पानी को दूसरे जलमार्ग से निकाल दिया जाता था। इस नगर के पास ही गंगा नदी बहती थी।[1]

नगर में स्थित राजभवनों की चर्चा भी हम स्रोत-ग्रन्थों में पाते हैं। इनको बनाने में सबसे अधिक लकड़ी का प्रयोग होता था। इन भवनों में स्थित सुनहरे खम्भे इतने सुन्दर थे कि मूसा और इकबताना के बाहर के राजभवनों से भी ज्यादा सुन्दर लगते थे। स्तम्भों पर बने पक्षियों को दूर से देखने पर वे रजत-पक्षी जैसे लगते थे दीवारों पर अभिलेख उत्कीर्ण किये गये थे। कमरों एवं दीवारों को बड़े ही उत्तम कोटि के चित्रों से सजाया गया था। राजभवनों के चारों ओर बाग-बगीचे और तालाब थे। एक-से-एक सुन्दर पेड़ों एवं पौधों से अशोक ने नगर को अलंकृत किया था। शुद्ध हवा और रोशनी के लिये राजभवन के कमरों में खिड़कियों का प्रयोग किया गया था। इनकी बनावट मण्डपनुमा थी। डायोडारेस (अनन्त सदाशिव अल्तेकर और विजयशंकर मिश्र, **रिपोर्ट ऑन कुम्हरार एक्सकावेशंस**, 1951-55, पृ० 25) और मैक्रिण्डल, (वही पृ० 207) के अनुसार अशोक के राजभवन के ऊपर 84000 गुम्बद बने थे। अनेक शयन-कक्षों से गुप्तमार्ग निकले थे, जिनसे होकर संकट-काल में बाहर जाया जा सकता था। नगर के पूर्वी भाग में मुख्य फाटक था। सम्भवतः सूर्य की प्रथम रोशनी को ध्यान में रखकर ऐसा किया गया था। अनाज को रखने के लिए राजभवन में गोदाम (**भाण्डागारं स्थापयितु**)- से थे। राजपरिवार के मनोरंजन के लिये नगर में मनोरंजनगृह बने थे। यहाँ उच्चाधिकारियों को भी मनोरंजन की सुविधा थी। अतिथियों को ठहरने के लिये अलग से अतिथिगृह बने थे।

1. देखें, कौटिल्य, वही, पृ० 64।

अर्थशास्त्र के अनुसार, घरों का निर्माण योजनाबद्ध ढंग से होता था। मैदान, उपवन, झील, तालाब आदि की भी इस ग्रन्थ में चर्चा है। घर में छत को मजबूत बनाने के लिये नीचे से शहतीर लगाया जाता था, जिसे दोनों किनारों से लोहे के पेंच पर कस दिया जाता था। इस लौह-बोल्ट को सेतु कहा जाता था। 'कौटिल्य' के उपर्युक्त तथ्यों की प्रामाणिकता पुरातात्त्विक सामग्रियों से होती है। भवन-निर्माण-कार्य के बारे में कौटिल्य सलाह देते हैं कि इसका निर्माण किसी भी घर को दो अर्तनी या तीन फुट की दूरी पर होना चाहिए, अर्थात् दो घरों के बीच तीन फुट की खाली जगह होती थी ताकि हवा और रोशनी ठीक से सभी घरों में पहुँच सके। उपर्युक्त व्यवस्था को वैसे मकानों के लिये लागू नहीं किया जाता था जो स्त्रियों को लगभग दस दिनों तक कैदी के रूप में रखने के लिए बनाये जाते थे। वैसे मकान कुछ ही दिनों के लिए बनाये जाते थे, अतः उनकी मजबूती पर बहुत ध्यान नहीं दिया जाता था। मकान के आगे नाला होता था।

प्रत्येक मकान की छत एक-दूसरे से लगभग 4 फुट (चार पद) की दूरी पर होती थी। घर का मुख्य दरवाजा एक किश्कु का होता था। नगर में कई तल्लों के मकान होते थे। छोटे घर के कमरों में ऊँचाई पर छोटी-छोटी खिड़कियाँ बनी थीं। मकान-मालिक अपने मकानों का निर्माण किसी भी दशा में मुख्य दरवाजे को ध्यान में रखकर कर सकता था लेकिन उसे इस बात पर ध्यान देना आवश्यक था कि वह स्वास्थ्य के लिये हानिकारक नहीं हो। वर्षा एवं तेज हवा से सुरक्षित रखने के लिये मकानों की छत काफी मजबूत बनायी जाती थी। छत को लम्बी-चौड़ी चटाई से ऊपर से छा दिया जाता था ताकि वर्षा का पानी कमरे के भीतर न घुसे। चटाई को ऊपर से इस तरह ढँका जाता था कि वह हवा के झोकों से उड़े नहीं। मुख्य मार्ग या राजमार्ग पर किसी भी भवन के सामने दरवाजा और खिड़की करके उसको बनाना कानूनन गलत माना जाता था। अड़ोस-पड़ोस के घरों और सामान्य जन की सुविधा को ध्यान में रखते हुए ही मकानों का निर्माण किया जाता था। अपने घर का गन्दा जल दूसरे के घरों के सामने फेंकना गैरकानूनी था। घरों के सामने नाला होता था, जिसमें से होकर गन्दा पानी बहता रहता था। घरों में रसोई घर की व्यवस्था विशेष रूप से होती थी। पाटलिपुत्र की नगर-योजना से सम्बंधित अनेक विशेषताएँ आधुनिक युग में भी देखने को मिलती हैं।

अशोक के काल में इस नगर में एक कारागार की स्थापना की गई

थी। यह ऊँची दीवारों से घिरा था। कारागार के प्रत्येक कोने पर एक-एक विशाल मीनार बनी हुई थी। कैदियों के आने-जाने के लिये मात्र एक ही दरवाजा कारागार में था। मृत्यु-दण्ड पाये हुए कैदी को रखने एवं मृत्युदण्ड देने के लिए कारागार में अलग से व्यवस्था थी।

पेय जल की आपूर्त्ति के लिए नगर में अनेक कुएँ बने थे। पाँच फुट के दायरे में कुएँ का आकार होता था। इसे बनाने में विशेष प्रकार की ईंटों का प्रयोग किया जाता था।

खुदाई में लकड़ी के बने नालों की जानकारी मिली है, जो जमीन के अन्दर बने होते थे। आधुनिक पटने में 'पुल का बाग' नामक स्थान में 40 फुट लम्बे नाले का अस्तित्व मिला है, जो सड़क की दाहिनी ओर स्थित था। यह नाला सतह से दस फुट नीचे था। आधुनिक पुल का बाग की जो सतह है, उससे 32 फुट नीचे यह नाला स्थित है। एक और नाले का अवशेष इस नगर में मिला है, जो दो लाइनों में बहता था। यह लकड़ी का बना था और दस फुट ऊँचा, आठ फुट तीन ईंच लम्बा और साढ़े तीन फोट चौड़ा था। सड़क की दोनों ओर इस नाले को सही ढंग से रखने तथा वह हिले-डुले नहीं, इसके लिये उसमें दो फुट लम्बे लौह कीलों को ठोका गया था।

नगर के लोगों को नियमित रूप से पेय जल मिल सके, इसके लिये अनेक सरोवर बनाये गए थे, जिनके किनारे बगीचे लगे थे। इन सरोवरों का तल पत्थर से बना था, जो आइने के समान चमकता था। सरोवरों का पानी 'पवित्र जल" कहलाता था।

पाटलिपुत्र नगर का निर्माण योजनाबद्ध तरीके से हुआ था। किसी भी नगर की प्रमुखता सर्वप्रथम इस बात पर निर्भर करती है कि उसकी योजना कैसी है, जिसके आधार पर उसे निर्मित किया गया है। नगर-योजना में मुख्यतः इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि वह आवासीय, व्यापारिक एवं प्रशासनिक भागों में बँटा हो जहाँ सारे कार्य बिना किसी को तकलीफ पहुँचाये सुविधापूर्वक किये जा सकें। नगर में सड़कों का जाल हो ताकि आसानी से और कम समय में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचा जा सके। सुरक्षा, सफाई और आराम या सुविधा को ध्यान में रखते हुए भवनों का निर्माण किया जाय। योजनाबद्ध ढंग से नगर-निर्माण के सिलसिले में मनोरंजन-स्थलों, विद्यालयों और उच्च स्तर के सार्वजनिक

स्थलों पर ध्यान देना आवश्यक होता है। जनसेवा, नाली, पीने का जल आदि की व्यवस्था भी नगर-योजना की विशेषता मानी जाती है।

सड़कें

भारत के प्राचीन इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण नगरी पाटलिपुत्र का संबंध पूरे भारत एवं सीमावर्त्ती क्षेत्रों से था। अनेक राजमार्ग और महाजनपथ यहाँ से विभिन्न दिशाओं में जाते थे।

श्रावस्ती प्राचीन काल में एक महत्त्वपूर्ण व्यापारिक नगरी थी वहाँ से एक महाजनपथ वैशाली जाता था, जो पूरब की ओर अनेक नगरों से होकर ताम्रलिप्ति चला जाता था। वैशाली से इसकी एक शाखा दक्षिण की ओर निकलती थी, जिसमें अनेक पहाड़ थे। इसपर राजगृह से कुशीनरा तक की यात्रा करते समय भगवान बुद्ध ठहरे थे। वे राजगृह से अंबलट्ठिक और नालन्दा होते हुए पाटलिग्राम आये थे तथा वहाँ से गंगा पार कर कोटिग्राम और नदिका होते हुए वैशाली पहुँचे थे। इस प्रकार इस काल में महाजनपथ पानीपत में आकर दो शाखाओं में बँट जाता था। इसकी एक शाखा गंगा के दाहिने किनारे से प्रयाग में इसे पार कर बनारस आती थी। प्रयाग के पास कौशाम्बी से एक रास्ता साकेत होकर श्रावस्ती चला जाता था। लेकिन प्रधान पथ उत्तर-पूरब की ओर चलते हुए उक्कचेल से वैशाली पहुँचता था। वैशाली से उत्तर को ओर यह रास्ता कपिलवस्तु चला जाता था। वैशाली से दक्षिण की ओर यह रास्ता पाटलिग्राम, उरुवेल और गोरथगिरि (बराबर की पहाड़ी) होता हुआ राजगृह चला जाता था।

कौटिल्य के **अर्थशास्त्र** से तत्कालीन देशीय एवं अन्तर्देशीय व्यापार पर प्रकाश पड़ता है। व्यापारिक आवागमन एवं सैनिकों के गमनागमन के लिए पाटलिपुत्र से अनेक मार्ग देश के कोने-कोने तथा विदेशों तक जाते थे। पाटलिपुत्र-बलख और पाटलिपुत्र-दक्षिण यानी प्रतिष्ठान के बीच राजमार्ग थे, जिससे देश का अधिकांश व्यापार होता था। प्राचीन आचार्यों का उदाहरण देते हुए कौटिल्य का कहना है कि उनके अनुसार स्थल मार्गों की अपेक्षा समुद्र और नदियों के रास्ते अच्छे होते थे। लेकिन कौटिल्य इस मत से सहमत नहीं था। शायद कट्टर ब्राह्मण होने के कारण कौटिल्य को समुद्र-यात्रा अधिक रुचिकर नहीं लगती थी। लेकिन अर्थशास्त्र की मर्यादा मानकर उसने समुद्र-यात्रा के विरुद्ध धार्मिक प्रमाण न देकर केवल उसमें आनेवाली विपत्तियों की ओर संकेत भर किया है।

मेगास्थनीज के वर्णनों से पता चलता है कि पाटलिपुत्र से एक महामार्ग गांधार तक जाता था, जिस पर उसने यात्रा की थी। "अथर्व-वेद' में भी इस तरह का उल्लेख मिलता है।

मौर्य शासक बिम्बिसार ने मार्गों की ओर काफी ध्यान दिया था, अतः देश के अन्य मार्गों की तरह पाटलिपुत्र तक आने-जानेवाले मार्ग बहुत ही उत्कृष्ट कोटि के थे। जैसा कि स्ट्रेबो लिखता है कि यूनानी राजदूत मेगास्थनीज यह देखकर दंग रह गया था कि उसे निर्धारित समय पर पाटलिपुत्र पहुँचने में मार्ग में किसी प्रकार की कोई दिक्कत नहीं हुई थी।

यूनानी लेखकों ने भारत की सड़कों का वर्णन किया है। उनके अनुसार भारतीय सड़क बनाने में काफी दक्ष थे। वे सड़क के किनारे स्तम्भ लगाकर दूरी, उपसड़क आदि का विवरण लिखते थे। पाटलिपुत्र नगर में छः प्रबन्ध-बोर्ड थे। उनके लिए वह ठहरने का प्रबन्ध करता था और उनके नौकरों के द्वारा उनके चाल-चलन पर निगाह रखता था। देश छोड़ने के समय बोर्ड उनको पहुंचवाने का प्रबन्ध करता था। उनमें से किसी की दुर्भाग्यवश मृत्यु हो जाने पर बोर्ड उनके असबाबों को उसके रिश्तेदार के पास भिजवाने का प्रबन्ध करता था। बीमार यात्रियों की सेवा-टहल तथा मरने पर उसकी अन्तिम क्रिया का भार उसी बोर्ड पर रहता था।

पाटलिपुत्र का सम्बन्ध बलख के साथ था। कई अन्य मार्गों द्वारा पाटलिपुत्र का सम्बन्ध दूसरी राजधानियों के साथ भी था। समुद्र के किनारे के रास्तों से भारतीय बन्दरगाहों का काफी व्यापार चलता था।

बलख से होकर एक महाजनपथ पूर्व की ओर बदख्शां तथा पामीर की घाटियों को पार कर चीन पहुँच जाता था। उससे उत्तर जाकर वह महापथ यूरो-एशियाई रास्तों में जा मिलता था। इसके दक्षिण दरवाजे से महापथ भारत की ओर आता था, जो हिन्दुकुश, सिन्धु नदी क्षेत्र और तक्षशिला की ओर आता था और वहां यह पाटलिपुत्र वाले जनपथ में मिल जाता था। यह पाटलिपुत्र वाला महाजनपथ मथुरा में आकर दो दिशाओं में बँट जाता था। इसकी एक शाखा पाटलिपुत्र चली आती थी तथा आगे पूरब की ओर बढ़ती ताम्रलिप्ति तक चली जाती थी। दूसरी शाखा मथुरा से पश्चिमी समुद्र तट पर स्थित भरु-कच्छ तक चली जाती थी।

पाटलिपुत्र नगर की परिधि 18-19 किलोमीटर थी। कई साक्ष्यों से प्राचीन काल के पाटलिपुत्र नगर पर प्रकाश पड़ता है। गंगा से इस नगर का परिदृश्य देखा जा सकता था। नदी तट के साथ यह नगर चार किलोमीटर तक फैला हुआ था और मिट्टी के पुश्तों, जलपूरित गम्भीर परिखाओं और प्रबल प्राचीरों से घिरा हुआ था, जिसमें सैकड़ों प्रेक्षण-बुर्ज और उठवाँ पुलों से युक्त 64 द्वार बने हुए थे। खुदाई में 3·5 मीटर से भी ज्यादा मोटे प्राचीर के अवशेष मिले हैं। उसे भूमि में एक-एक मीटर की गहराई तक गाड़े गए सागौन के शहतीरों को बाड़ की तरह खड़ा करके बनाया गया था। यह एक सुनियोजित नगर था। सीधे और चौड़े मुख्य मार्गों के दोनों ओर वणिकों तथा वारांगनाओं की बहुमंजिली हवेलियाँ, धर्मशालाएँ, अतिथिशालाएँ, प्रेक्षागृह, क्रीड़ागार, दूकानें आदि थीं। भवन-निर्माण में अधिकतर काष्ठ का ही प्रयोग किया गया गया। ईंटों का प्रयोग बहुत कम हुआ था। यहाँ पत्थर से निर्मित एक भी भवन नहीं था। नगर के मध्य में स्थित सम्राट् अशोक का राज-प्रासाद भी काष्ठ से ही बना हुआ था और उसमें पत्थर का प्रयोग केवल सभागार के स्तम्भों के निर्माण के लिये किया गया था।

इस राजप्रासाद का वर्णन करते हुए मेगास्थनीज लिखता है कि "अपनी आंतरिक सज्जा और स्वर्ण, रजत, तथा मणि-माणिक्यों के विपुल प्रयोग की दृष्टि से मौर्य सम्राटों के असंख्य स्तम्भयुक्त तिमंजिले प्रासाद के समक्ष सूसा में स्थित पारसीक सम्राटों के विश्वप्रसिद्ध प्रासाद निष्प्रभ लगते थे।

पाटलिपुत्र बहुत ही सुनियोजित एवं सुव्यवस्थित नगर था। नगर की जल-आपूर्ति, मलवाह-व्यवस्था और स्वच्छता काफी अच्छी थी। व्यापार तथा वाणिज्य, शिल्प तथा उद्योग, जन्म-मृत्यु-पंजीकरण, विदेशी नागरिकों की निगरानी आदि के लिए नगर प्रशासन के अन्तर्गत विशेष विभाग थे। कानून तथा व्यवस्था और अग्निनिरोध के पालन पर नजर रखने का दायित्व नगर के महापौर पर था।

नगर में मोती, चर्णय, मणियाँ, हीरे-जवाहरात, मूंगा, सुगन्धित लकड़ी, कभी-कभी दिखाई देने वाले जानवरों की खालें, कम्बल, रेशम, लिनेन, सूती वस्त्र आदि की बिक्री होती थी। पाटलिपुत्र में सोना, चांदी, टीन, लोहा, रत्न और बहुमूल्य पत्थर से आभूषण आदि बनाए जाते थे। कपास, रेशम तथा जूट का वस्त्र, कवच, कम्बल, रस्सी आदि तैयार किये जाते थे। कुछ उद्योगों का सरकारीकरण था। नगरवासी रंगीन

वस्त्र एवं बेलबूटेदार मलमल का प्रयोग काफी करते थे। नगर के जीवन की रंगीनियाँ उसके मदिरालयों, जलपानगृहों, भोजनालयों, सरायों, जुआघरों, वेश्यालयों तथा कसाईबाड़ों में देखी जा सकती थीं। यहाँ यात्रियों के लिए धर्मशालाएँ, शिल्पकारों के लिए कारखाने, मदिरालय, भोजनालय, नाटक, नाच, गान, संगीत, जादूगरी, बाजीगरी, आदि की व्यवस्था थी।

वेश्याएँ गुप्तचरी तथा देशी-विदेशी मेहमानों का मनोरंजन करती थीं। इनकी आर्थिक स्थिति काफी अच्छी थी। जैन स्रोतों के अनुसार कोशा और उपकोशा पाटलिपुत्र की दो प्रसिद्ध वेश्याएँ थीं। दोनों बहनें थीं। कोशा स्थूलभद्र और उपकोशा वररुचि से प्रेम करती थीं। कोशा ने स्थूलभद्र के साथ 12 वर्ष व्यतीत किये, इसलिए स्थूलभद्र को छोड़ किसी अन्य पुरुष को वह नहीं चाहती थी। इसी समय स्थूलभद्र घोर तप करने चले गये। लेकिन एक बार अभिग्रह ग्रहण करके वे फिर कोशा के घर लौटे। कोशा ने समझा कि तप से पराजित होकर वे उसके साथ रहने आये हैं। अपने उद्यान गृह में उसने रहने के लिए उन्हें स्थान दे दिया। रात्रि के समय सर्वालंकार से विभूषित होकर जब वह स्थूलभद्र के पास आयी तो चार माह तक लगातार रहकर भी स्थूलभद्र को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकी। उल्टे उन्होंने कोशा को उपदेश दिया और उपदेश से प्रभावित होकर कोशा ने श्राविका के रूप में व्रत ग्रहण किये। उसने अब निश्चय कर लिया कि राजा के आदेश से ही वह किसी पुरुष के साथ सहवास करेगी, अन्यथा ब्रह्मचारिणी रहेगी। पाटलिपुत्र के राजकुमार मूलदेव का सम्बन्ध उज्जैनी के देवदत्ता नामक प्रसिद्ध वेश्या से था।

जैन साहित्य **कुवलय माला कहा** के अनुसार कौशल नगरी के राजा कौशल के पुत्र तोरुल ने नगरश्रेष्ठि की अति सुन्दर पुत्री सुवर्णा को देखा और उनमें परस्पर प्रेम हो गया। अवसर पाकर तोरुल रात्रि में उससे मिलने गया। सुवर्णा ने बताया कि उसका पति सुदत्त व्यापार करने लंका गया था किन्तु बारह वर्ष हो गए और नहीं लौटा था। अकेलेपन के कारण सुवर्णा मृत्यु को गले लगा लेना चाहती थी किन्तु राजकुमार ने उसे अपनी प्रेमिका बना लिया। कुछ समय बाद सुवर्णा गर्भवती हो गयी। पता चलने पर नगरश्रेष्ठि ने कौशल नरेश से शिकायत की और मंत्री के सहयोग से जान बचाने के लिए तोरुल पाटलिपुत्र भाग गया और वहाँ के शासक जयवर्मन के यहाँ नौकर हो

गया। सुवर्णा को मालुम हुआ कि तोरुल मार डाला गया। अतः वह भी मरने को चली। एक सार्थ के साथ वह पाटलिपुत्र की ओर चली। कोशल से विन्ध्यटवी पार कर पाटलिपुत्र जाया जाता था। किसी स्थान की यात्रा करने के लिए सार्थ को प्रामाणिक माना जाता था ताकि बिना किसी कठिनाई विशेष के गन्तव्य स्थान पर पहुँचा जा सके। रात्रि के पश्चिम पहर में गर्भावस्था के कारण वह सार्थ के साथ न चल सकी और पीछे रह गयी। रास्ते के जंगल में उसने एक पुत्र और एक पुत्री को एक साथ जन्म दिया और बच्चों को पालने के लिए मरने की इच्छा त्याग दी। बच्चों को वहीं छोड़ वह रक्त धोने गई। इधर एक बाघ दोनों बच्चों की पोटली को उठा ले गया। रास्ते में लड़की पोटली से गिर गई और जय वर्मन के संदेशवाहक को मिल गयी जिसे वह पाटलिपुत्र ले आया। उसका नाम वनदत्ता रखा गया। लड़के को बाघ से जय-वर्मन का कोई सम्बन्धी छुड़ा ले गया। पाटलिपुत्र में उसका नाम व्याघ्रदत्त या मोहदत्त रखा गया। सुवर्णा भी पाटलिपुत्र पहुँची और अनजाने में वनदत्ता की धात्री के रूप में काम करने लगी।

जवान होने पर वनदत्ता और मोहदत्त की भेंट किसी महोत्सव में हुई और दोनों एक-दूसरे पर मोहित हो गए। राजकुमार तोरुल की भी नजर वनदत्ता पर पड़ी और वह भी अपनी ही पुत्री को अनजाने में चाहने लगा। वनदत्ता अनजाने में अपने पिता तोरुल को नहीं बल्कि युवा मोहदत्त को चाहती, अतः तोरुल ने तलवार के बल पर वनदत्ता को प्राप्त करना चाहा। मोहदत्त को इसकी जानकारी हुई और उसने तोरुल को जान से मार दिया। वनदत्ता के साथ जैसे ही उसने काम क्रीड़ा प्रारम्भ की, उसे एक आवाज सुनाई दी कि वह अपने पिता की हत्या कर अपनी बहन के साथ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने जा रहा था। यह एक मुनि की आवाज थी। अपने पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए मोहदत्त मुनि धर्मनन्दन के पास आया और उनसे दीक्षा ली।

चन्द्रगुप्त मौर्य सम्भवतः जैन धर्म का समर्थक था लेकिन ऐसा नहीं लगता कि उसने जैन धर्म को कोई विशेष सुविधा प्रदान की हो। इस काल में अनेक दार्शनिक स्त्रियों की नगर में उपस्थिति की बात पाते हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में जैन धर्म की प्रथम परिषद् का सत्र पाट-लिपुत्र में सम्पन्न हुआ। इस बैठक में जैन धर्म के आगमों को संगृहीत

करने का प्रयास किया गया था। इस परिषद् के सभापति स्थूलभद्र थे।

सम्राट् अशोक मौर्य के काल में पाटलिपुत्र बौद्ध धर्म का एक प्रसिद्ध केन्द्र हो गया। बौद्ध उपदेशों का प्रचार करने के लिए उसने इस नगर में दो प्रस्तर-स्तम्भ स्थापित किये जिनमें से एक खुदाई से मिला है। अशोक के शासनकाल के 18वें वर्ष में कुक्कुटाराम नामक उद्यान में मोगलीपुत्र तिस्सा (तिष्य) के सभापतित्व में द्वितीय बौद्धधर्म संगीति (महासम्मेलन) आयोजित किया गया था।

तिष्य का जन्म पाटलिपुत्र नगर के एक ब्राह्मण-गृह में हुआ था। कुछ विद्वानों की राय में उनके पिता का नाम "मोग्गलि" था और कुछ की राय में "मोग्गलि" उनकी माता का नाम था। ब्राह्मण-पुत्र तिष्य अपनी अठारह वर्ष की आयु में ही तीनों वेदों के पारंगत विद्वान हो गये थे। वेदों के अतिरिक्त उन्होंने दूसरे शास्त्रों का भी गंभीर अध्ययन किया था। जिस समय मोग्गलि-पुत्र तिष्य ब्राह्मण ग्रन्थों का अध्ययन कर रहे थे, उस समय "सिग्गव" नामक बौद्ध स्थविर सात वर्षों से तिष्य के घर पिंडपात करने के लिए आया करते थे। सिग्गव का इतने दिनों से निरंतर पिंडपात के लिए तिष्य के यहाँ आने में एक ही कारण था कि तिष्य जैसे प्रतिभाशाली छात्र को बौद्ध धर्म में लाया जाय। सिग्गव परिचय-प्रभाव की प्रगाढ़ता तथा अनुकूल अवसर की ही ताक लगाये चुप रहे थे। एक दिन वह अवसर आ ही गया। तिष्य विद्याध्ययन के लिए अपने गुरु के घर गये थे। वैसा जानकर ही सिग्गव उनके घर आये। अकस्मात् तथा अनवसर में बौद्धभिक्षु के उपस्थित हो जाने पर तिष्य के पिता ने जल्दी में, तिष्य का ही आसन सिग्गव को बैठने के लिए दे दिया। सिग्गव उसी आसन पर बैठकर तिष्य के पिता से बातचीत करने लगे। इसी बीच तिष्य घर पर आ गये। कहते हैं कि अपने आसन पर बैठे बौद्धभिक्षु को देखकर तिष्य का चेहरा क्रोध से तमतमा आया, जिसे सिग्गव ने अच्छी तरह भाँप लिया। सिग्गव ने अनुकूल अवसर देखकर तिष्य ने पूछा—"क्या तुम शास्त्र जानते हो?" तिष्य ने भी सिग्गव से ऐसा ही प्रश्न किया। इस पर स्थविर सिग्गव ने कहा—"हाँ, मैं तो शास्त्र जानता हूँ।" सिग्गव का इतना कहना था कि क्रोध से तमतमाये तिष्य ने तुरत वेद-मंत्रों की व्याख्या पूछ दी। किन्तु, सिग्गव साधारण भिक्षु तो थे नहीं, उन्होंने उन मंत्रों की सुन्दर और विस्तृत व्याख्या कर दी।

सिग्गव स्वयं वेदज्ञ थे और पाटलिपुत्र के किसी ब्राह्मण-अमात्य के पुत्र थे। ब्राह्मण-ग्रंथों का अध्ययन कर लेने के बाद ही उन्होंने बौद्धधर्म में प्रव्रज्या ली थी।

तिष्य के प्रश्नों के उत्तर दे लेने के बाद सिग्गव ने तिष्य से अभिधर्मपिटक के "चित्तयमक" प्रकरण की कुछ बातें पूछीं, जिनका उत्तर तिष्य नहीं दे सके। सिग्गव के अपार ज्ञान को देखकर तिष्य ने उनसे शिक्षा पाने की प्रार्थना की, जिसे सिग्गव ने स्वीकार कर लिया और तिष्य को शिष्य बनाया। तिष्य ने सिग्गव के अतिरिक्त पाटलिपुत्र के प्रसिद्ध दूसरे भिक्षु 'चंडवज्जि' से बौद्धधर्म-ग्रन्थों की भी शिक्षा ली। चंडवज्जि भी पाटलिपुत्र के एक ब्राह्मण अमात्य के ही पुत्र थे और सिग्गव के साथी थे। दोनों ने साथ-साथ ब्राह्मण-ग्रन्थों का अध्ययन किया था। यह सारी कथा "महावंश" के पाँचवें परिच्छेद में मिलती है। उसके अनुसार सम्राट् अशोक तक की शिष्य-परंपरा क्रमशः इस प्रकार थी—(1) बुद्ध, (2) उपालि, (3) दासक, (वैशाली-निवासी), (4) सोणक (काशी-निवासी), (5) सिग्गव और चंडवज्जि (6) मोग्गलिपुत्र तिष्य और (7) अशोक।

सम्राट् अशोक ने जहाँ अपने को और अपने परिवार को बौद्धधर्म में प्रतिष्ठित करके उसे राजधर्म बनाया, जिससे सर्वसाधारण जनता की अभिरुचि इस धर्म की ओर प्रवृत्त हुई, वहाँ उसने बौद्धधर्म के विकास के लिए राजा के खजाने को भी धर्म-कार्य में लगवाया। दान के नाम पर खजाने का भी उपयोग उसने बौद्धधर्म के विकास में खूब किया। दान देने में और भिक्षुओं को भोजन कराने में अपनी उदारता के कारण ही वह "अनाथपिंडक" की तरह 'दायक' कहलाने लगा। पाटलिपुत्र के बिहारों में हजारों-हजार बौद्ध-भिक्षु भोजन पाते और चैन का जीवन बिताते थे। उन्हें चीवर भी भरपूर मिलता और आवास के लिए तो विहार बन ही गये थे। फल यह हुआ कि भोजन आदि के लोभ से अनेक दूसरे धर्म के लोग भी सिर मुँड़ाकर बौद्धधर्म में दीक्षित होकर भिक्षु बन गए। ऐसे भिक्षुओं की संख्या हजारों तक पहुँच गई। संघ में हजारों नकली भिक्षुओं के आ जाने से धर्म की दुर्दशा होने लगी। इस तरह भोजनभट्ट भिक्षुओं के द्वारा "विनय" की अवहेलना देखकर मोग्गलिपुत्र तिष्य को बहुत दुःख हुआ और उन्होंने सम्राट् के दान का दुरुपयोग होते देखकर उसे दान करने से रोकना चाहा। पर धर्मोन्मादी सम्राट् अपने दायकत्व के अहंभाव को नहीं छोड़ सका। अन्त में दुःखी होकर मोग्गलि-

पुत्र तिष्य ने पाटलिपुत्र छोड़ दिया और वे "अहोगंग" पर्वत पर चले गये।

कुछ दिनों बाद पाटलिपुत्र के विहार में कुछ धर्मनिष्ठ बौद्धों और नकली बौद्धों में झगड़ा खड़ा हो गया। झगड़ा ऐसा बढ़ा कि संघ में उपोसथ-कर्म तक बन्द हो गया और चार वर्षों तक बन्द रहा। बात यह हुई कि सभी भिक्षु एक साथ मिलकर "उपोसथ" करने को राजी नहीं होते थे और एक विहार में, बौद्ध नियम के अनुसार, उपोसथ-कर्म अलग-अलग हो नहीं सकता था। ऐसा करना विहित नहीं था। यह बात सम्राट् तक पहुंची। सम्राट् अशोक ने भिक्षुओं के झगड़े को शान्त करने के लिए "अशोकाराम विहार" में अपने एक अमात्य को भेजा। उस बेवकूफ अमात्य ने झगड़ा शान्त होते न देखकर जबर्दस्ती उसने उपोसथ-कर्म कराना चाहा, पर जब उसने देखा कि राजभय से भी वे भिक्षु नहीं डरते, तब उसने क्रोध में आकर कई भिक्षुओं के सिर कटवा डाले। वह ऐसा क्रोधोन्मादी हो गया था कि तब तक वह भिक्षुओं का संहार करता रहा, जब तक अशोक का छोटा भाई तिष्य, जो बौद्ध भिक्षु हो गया था, उस हत्यारे के सामने आकर बैठ न गया। तिष्य ने सामने आकर कहा—"अब तुम जब हमारा सिर काट लोगे, तभी किसी का काट सकते हो।" सामने तिष्य को देखकर उस अमात्य का क्रोध शान्त हुआ।

इस अप्रत्याशित दुर्घटना का समाचार जब सम्राट् अशोक को मालूम हुआ, तब वह माथा पीटकर रह गया। इस हत्या-जनित पाप की शान्ति के लिए तथा संघ के झगड़े को शान्त करने के निमित्त अशोक ने "अहोगंग" पर्वत पर, मोग्गलिपुत्र को बुला लाने के लिए अपना आदमी भेजा। मोग्गलिपुत्र ने आने से इनकार कर दिया। आदमी जब लौट आया, तब सम्राट् ने अनेक प्रार्थनाओं के साथ फिर मोग्गलिपुत्र के पास राज्य के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति को भेजा। दूसरी बार मोग्गलिपुत्र ने आना स्वीकार कर लिया। जब "अहोगंग" से गंगा के मार्ग द्वारा नाव से तिष्य आये, तब गंगा के घाट पर स्वयं सम्राट् आया और गर्दन भर पानी में जाकर अतिसत्कारपूर्वक, हाथ पकड़कर, मोग्गलिपुत्र को नाव से उतारा। पाटलिपुत्र में आकर मोग्गलिपुत्र ने संघ को शुद्ध करने के लिए सम्राट् के साथ मंत्रणा की और नकली भिक्षुओं को संघ से निष्कासित करने को कहा, जिसे अशोक ने मान लिया।

मोग्गलिपुत्र तिष्य ने अशोकाराम में इसके लिए एक बहुत बड़ी सभा की, जिसे "तृतीय संगीति" कहते हैं। इस संगीति में सम्राट् स्वयं

उपस्थित था। इस संगीति की चर्चा प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों में नहीं मिलती है, पर लंका के इतिहास ग्रन्थ "महावंस" में प्राप्त होती है। उसके अनुसार इस तृतीय संगीति में चने हुए दो लाख भिक्षु सम्मिलित हुए थे और यह नौ संगीति महीनों में सम्पन्न हुई थी। अशोक ने मोग्गलिपुत्र की आज्ञा से "शाश्वतवादियों" और "आत्मनिन्दकों" को (जो थेरवाद के सिद्धान्त और उसके विनय को नहीं मानते थे) संघ से बाहर करके पुनः उसे शुद्ध किया, किन्तु जो भिक्षु बाहर निकाले गये, वे भी कुछ थोड़े नहीं थे, उनकी संख्या 60 हजार थी। वे भिक्षु पाटलिपुत्र से जाकर "नालन्दा" में जमे और तभी से नालन्दा सर्वास्तिवादियों का गढ़ बन गया। ये सर्वास्तिवादी नालन्दा से ही दक्षिण में गये और वहाँ से कश्मीर, मध्य-एशिया तथा चीन में फैले। एक शाखा मथुरा में भी यहीं से गई। तृतीय संगीति में मोग्गलिपुत्र ने "कथावत्थु" की रचना की, जो बौद्ध ग्रन्थों में अत्यन्त मान्य एवं "अभिधम्म" ग्रन्थ है। महेन्द्र की आयु जब चौदह साल की थी, तब अशोक ने पाटलिपुत्र की गद्दी पाई थी। इसके बाद अशोक पाटलिपुत्र में रहने लगा, पर उसकी रानी, जो महेन्द्र की माता थी, अपने मायके विदिशा में ही रहती थी।

देवानां पिय तिस्स की भगिनी का नाम "अनुलोमा" या "अनुला" था। देश में धर्म का वातावरण देखकर अनुलोमा ने बौद्धधर्म में दीक्षित होने के लिए राजा से आज्ञा माँगी। तिस्स ने खुशी-खुशी आज्ञा दे दी, पर महेन्द्र ने कहा—"मैं स्त्री को दीक्षा नहीं दे सकता, पर धर्म के विस्तार को रोकना भी ठीक नहीं है।" इसलिए तिष्य से उसने कहा—मैं तो पिताजी के पास संदेश भेजूँगा ही, आप भी संदेश भेजिए कि कृपा कर धर्म के उपयोग के लिए अपनी कन्या (मेरी बहन) संघमित्रा को यहाँ भेज दें, ताकि नारियों में भी यथोचित धर्म-प्रचार हो! संदेश में यह भी भिजवाइए कि संघमित्रा साथ में बोधि-वृक्ष की शाखा भी लेती आवे, जो धर्म शाखा के प्रतीक रूप में यहाँ लगाई जाय।"

देवानां पिय तिस्स ने शीघ्र ही उपर्युक्त संदेश के साथ अपना दूत पाटलिपुत्र भेजा। जिस समय राजदूत ने लंका के राजा का संदेश अशोक को दिया, उस समय अशोक अपने पुत्र की सफलता सुनकर मारे खुशी से नाच उठा। उसने तुरन्त बोधगया से बोधिवृक्ष की शाखा बड़े सम्मान तथा उत्सव के साथ मँगवाई और संघमित्रा को गंगा में नाव पर बिठाकर तथा बड़े धूमधाम से अपने हाथों से शाखा उसे

सौंपकर, लंका के लिए रवाना किया। लंका में आज तक वह पीपल-वृक्ष है, जो संसार का सबसे पुराना वृक्ष है।

सम्राट् अशोक की छठी पीढ़ी में वृहद्रथ नाम का राजा हुआ। वह भी बौद्धधर्म का आचरण करता था। पर उसका सारा धर्माचरण दिखावटी था, निष्ठा का उसमें लेश मात्र नहीं था। इसलिए धर्म के ढोंग के कारण वह आलसी तथा कायर कहा जाता था। इतिहास में उसके लिए "धर्मवादी अधार्मिक" तथा "मोहात्मा" (महात्मा का अपभ्रंश = मूढ़)—जैसे शब्द व्यवहृत हैं। इसका थोड़ा इतिहास जानने के लिए यह जानना आवश्यक है कि अशोक की तीसरी-चौथी पीढ़ी से ही, मौर्य साम्राज्य पर यवनों का अभियान आरंभ हो गया था तथा ये अभियान वृहद्रथ (191 से 184 ई० पूर्व) तक होते रहे। इसी वृहद्रथ के बाद मौर्य साम्राज्य का सूर्य अस्त हो गया। "खारवेल" के शिला-लेख में "वहसति मित्र" नाम के राजा का जो उल्लेख मिलता है, वह यही वृहद्रथ था, जिसका प्रमाण 'पुष्यमित्र' के सिक्कों से भी मिला है। इसी वृहद्रथ के समय में 'दिमित्रिय' यवन 'माध्यमिका' और साकेत को घेरता हुआ पाटलिपुत्र तक पहुँच गया था। कहते हैं कि उस समय पाटलिपुत्र के बचने का एकमात्र कारण यह हुआ कि दिमित्रिय के आक्रमण का समाचार सुनकर कलिंग के राजा खारवेल अपनी भारी सेना के साथ पाटलिपुत्र पहुँच गया। जब खारवेल की सेना पाटलिपुत्र से कुछ दूर ही थी कि दिमित्रिय पीछे की ओर हट गया। किन्तु खारवेल ने दिमित्रिय का पीछा करते हुए उसे पाटलिपुत्र से बहुत दूर पश्चिम की ओर खदेड़ दिया और तब वह फिर पाटलिपुत्र की ओर लौटा। पाटलिपुत्र पहुँचकर उसने अपनी हस्ति-सेना मगधराज वृहद्रथ के 'सुगांगेय' प्रासाद से भिड़ा दी। वृहद्रथ पकड़ा गया। खारवेल ने उसे अपने पैरों पर गिरवाया और उसने लाखों की सम्पत्ति उपहार में ली। जिस जिन-मूर्त्ति को मगध-सम्राट् नन्दिवर्द्धन कलिंग को जीतकर पाटलिपुत्र उठा लाया था, उस मूर्त्ति को भी खारवेल ले गया। इस तरह वृहद्रथ को पद-दलित कर उसने अशोक की कलिंग-विजय का पूरा-पूरा बदला चुका लिया।

अशोक के काल में पाटलिपुत्र में अशोकाराम नामक विहार की स्थापना हुई जिसके निर्माण में तीन वर्ष लगे और इसे इन्द्रगुप्त नामक स्थविर की देखरेख में बनवाया गया। महावंश और समन्तपासादिका के अनुसार तृतीय धर्म संगीति की कार्यवाही इसी आराम में हुई। अशोका-राम में स्थित एक जलाशय की चर्चा **मिलिन्दपन्हो** में है। मललसेकर

के अनुसार कुक्कुटाराम और अशोकाराम वस्तुतः एक ही विहार के दो नाम थे।

ताम्रलित्ति (ताम्रलिप्ति) का उल्लेख 'विनयपिटक' की 'अट्ठकथा' (सामन्तपासादिका) में है। अशोक-पुत्री भिक्षुणी संघमित्रा बोधिवृक्ष की शाखा को लेकर पाटलिपुत्र से नाव में बैठकर गंगा के मार्ग से ताम्रलिप्ति पहुँची थी और फिर वहाँ से समुद्र के मार्ग से लंका गई थी। लंका में वह जम्बुकोलपट्टन (वर्तमान सम्बलतुरि, लंका के उत्तर में) नामक बन्दरगाह पर उतरी थी। इससे ज्ञात होता है कि पाटलिपुत्र से गंगानदी के मार्ग से नावों पर बैठकर ताम्रलित्ति तक आवागमन अशोक के काल में होता था। ताम्रलित्ति से जहाज में बैठकर यात्री सिंहल के जम्बुकोलपट्टन नामक बन्दरगाह पर उतरते थे। इसी तथ्य की पुष्टि 'दीपवंस' और 'महावंस' के वर्णनों से भी होती है। 'महावंस' के ग्यारहवें परिच्छेद में सिंहली राजा देवानां पिय तिस्स अशोक के बीच भेंटों के आदान-प्रदान का वर्णन है। उसमें राजा देवानां पिय तिस्स के अमात्य लंका के जम्बुकोलपट्टन बन्दरगाह से नाव पर बैठकर सात दिन में ताम्रलित्ति बन्दरगाह में पहुँचते दिखाये गये हैं और फिर वहाँ से सात दिनों में उनका पाटलिपुत्र पहुँचना दिखाया गया है। इसी क्रम से उनकी वापसी यात्रा का भी वर्णन किया गया है।

श्रावस्ती से साकेत होते हुए एक मार्ग संकाश्य नगर पार कर इस मार्ग को कोसल देश की राजधानी श्रावस्ती से भी जोड़ता था। यही मार्ग उत्तरापथ कहलाता था और इसे हम प्राचीन 'ग्रांड ट्रंक रोड' कह सकते हैं। राजगृह से चलकर यह मार्ग पहले नालंदा आता था, फिर पाटलिपुत्र, वाराणसी, प्रयाग, पतिट्ठान (प्रयाग प्रतिष्ठान), कण्णकुज्ज (कन्नौज), संकाश्य, सोरों (सोरेय्य) और बेरंजा होता हुआ मथुरा पहुँचता था। मथुरा से आगे चलकर इन्द्रप्रस्थ (इन्दपत्त) और सम्भवतः सागल (स्यालकोट) होते हुए गान्धार राष्ट्र के तक्षशिला नगर तक पहुँचता था। बीच में पाटलिपुत्र, वाराणसी और प्रयाग प्रतिष्ठान पर गंगा पार करने के अतिरिक्त अन्य कई नदियाँ भी मार्ग में पार करनी पड़ती थीं, जहाँ घाटों पर नावें तैयार मिलती थीं।

नीहाररंजन राय[1] का कहना है कि कुम्हरार से प्राप्त अशोका-स्तम्भ ईरानी शैली में बना जिसकी प्रेरणा तथा आम रूपरेखा डेरियस द्वारा निर्मित सौ स्तम्भों वाले प्रांगण से मिली होगी। चन्द्रगुप्त के राज-महल में ऐसे प्रांगण थे जिनके चमकते स्तम्भ सोने की बेलों तथा चाँदी

1. मौर्य तथा मौर्योत्तर कला कला, दिल्ली, 1978 पृ० 7-10

की चिड़ियों से अलंकृत थे। कुम्हरार की खुदाई में सोने की बेलों के टुकड़े पाए भी गए हैं। हम जानते हैं कि एकबताना के महलों के प्रांगणों में देवदार तथा सरो से बने चढ़ाए गए स्तंभ थे और स्तंभों की स्वर्णिम बेलें अनिवार्य रूप से डेरियस के मोके पर झूलती बेलों की याद दिलाती हैं जो इसे लिडिया के पीथियस द्वारा उपहार में मिली थीं और जिनका शिल्प आयोनियाई था। कहना मुश्किल है कि पाटलिपुत्र का स्तंभ-युक्त प्रांगण खुद चंद्रगुप्त की अवधारणा थी या उसके उत्तराधिकारियों की। ज्यादा निश्चितता इस बात में है कि इसका निर्माण अशोक मौर्य के काल में हुआ था। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से कहा जा सकता है कि ईरानी संस्कृति मात्र से ही मौर्य सम्राट् प्रभावित न थे बल्कि अपने साम्राज्यवाद की पिपासापूर्ति के औजार के रूप में अशोक द्वारा सार्व-जनिक सभा के ईरानी प्रांगण की योजना की भावना इससे जुड़ी थी। शिलालेख बताते हैं कि किस हद तक अशोक स्वयं न सिर्फ अपने साम्राज्य भर में राजकीय आदेशों को प्रचारित कराने के लिए बल्कि इन शिला-लेखों के रूप और शैली के लिए भी अपने महान् ईरानी पूर्ववर्ती डेरियस का ऋणी था। डेरियस के बेहिस्तन शिलालेख के सूसाई रूपांतर में हम यह पाते हैं : (ऐसा) राजा डेरियस ने कहा : अहुरमज्दा की कृपा से मैंने शिलालेख दूसरे तरीके से बनवाए······जैसा कि पहले नहीं होते थे··· और यह लिखा गया था और मैं···तब मैंने उन शिलालेखों को सभी देशों में और लोगों के पास भेजा···।

अशोक के शिलालेखों के रूप के सिलसिले में बहुत पहले ही सेनार्त ने ईरानी राजाओं के शिलालेखों से उनकी समानता की ओर संकेत किया था। अशोक का आदेशपत्र प्रायः इस सूत्र से शुरू होता है, 'देवनं पिय पियदसि एवमाह' जो सेनार्त के अनुसार, "भारतीय पुरालेख-शास्त्र में एकदम अकेला उदाहरण है···डेरियस से आर्टाक्षेर्क्सेस ओकस तक ईरानी शासकों के सारे शिलालेखों में 'थतेय दरयवौश नयथिय' (ऐसा राजा डेरियस ने कहा) वाक्यांश या इसका समानार्थी 'थतेय नयर्श' इत्यादि हर उद्घोषणा की प्रस्तावना के रूप में अनिवार्यतः आता है। दोनों मामलों में प्रथम पुरुष के इस वाक्यांश के तुरंत बाद उत्तम पुरुष का प्रयोग होता है और इस विलक्षण तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट करने में भी हम उचित ठहरते हैं कि फिर दोनों मामलों में वही शब्द-दिपि, लिपि—शिलालेखों के लिए प्रयुक्त हुआ है और फिर जैसा कि हमने देखा है, बिलकुल स्वतंत्र आधारों पर हम स्वीकार करने लगते हैं

कि इस शब्द का भारतीय रूप ईरान से लिया हुआ है।" इस संबंध में सेनार्त से पूरी तरह सहमत भी नहीं हुआ जा सकता है। क्योंकि राजकीय उद्घोषणाओं के लिए ऐसे ही सूत्र का हवाला अर्थशास्त्र में भी मिला है और प्रारम्भिक बौद्धग्रन्थ 'तथागतो आहो, एवंवादि महासमणो' आदि पुरातन तथा पारंपरिक शब्दों का लगातार इस्तेमाल करते हैं। वस्तुतः बरुआ के इस कथन से सहमत होना पड़ता है कि शायद अशोक वाला सूत्र भारत की साहित्यिक परंपरा से उत्पन्न हुआ था जिसे 'होवाय याज्ञवल्क्य, एवमाहुर्मनीषिणः' इत्यादि उपनिषदीय पदों में भी देखा जा सकता है। लेकिन यह तथ्य अपनी जगह पर बना रहता है कि अशोक के शिलालेखों के सारे चरित्र का उनके रूप सहित ईरानी शिलालेखों के साथ न नकारने योग्य पारिवारिक समानता है और ऐसा कुछ भी नहीं जो उन्हें परवर्ती भारतीय पुरालेखों से जोड़ सके। 'धम्म' के नियमों का पालन करने के लिए लोगों को प्रोत्साहित करने का अशोक का विशेष तरीका भी ईरानी प्रथा से लिया हुआ जान पड़ता है जिसे डैरियस ने वेहिस्टन तथा नक्श-ए-रुस्तम शिलालेखों में आरम्भ किया था।

दो महत्त्वपूर्ण तथ्य उभर कर सामने आते हैं। प्रथमतः मौर्य काल से निश्चित रूप से संबंधित जो भी अवशेष हमें उपलब्ध हो सके हैं वे मौर्य दरबार की उपज हैं अर्थात् उन्हें मौर्य सम्राटों के आदेश पर और शायद उनकी प्रत्यक्ष देखरेख में तैयार किया गया था। दूसरे, यह दरबार तथा इसके स्वामी उत्कट यूनान-प्रेमी थे और इस साथ-साथ ईरानी कला तथा संस्कृति से काफी हद तक प्रभावित थे। इस काल में पहली बार स्थायी सामग्री में भारतीय कला को ढालने के लिए तथा मूर्ति शिल्प और वास्तु शिल्प के लिए पत्थर का पूरी सहजता एव सामर्थ्य से इस्तेमाल करने के लिए इस दूसरे तत्त्व को ही श्रेय दिया जा सकता है। इसके साथ ही स्वीकार करना होगा कि भारत में मौर्य काल से पहले भी कला थी जिसे मुख्यतः लकड़ी और अंशतः धूप में सूखी ईंट, मिट्टी, हाथीदांत, धातु और खनिज पत्थर में गढ़ा जाता था। जाहिर है कि यह कला मुश्किल से ही जीवन तथा वस्तुओं को विशाल अनुपातों तथा भारी आयामों में उतार सकती थी।

नगर के अधिकारी

मेगास्थनीज ने अस्तोनोमोई नामक नगर-अधिकारियों का उल्लेख किया है, जिनके दायित्वों का वर्णन कौटिल्य ने विस्तारपूर्वक किया है।

इन कामों म कौटिल्य ने "फैक्टरियों के निरीक्षण" का भो उल्लेख किया है। कौटिल्य ने कहा है कि नगरों की ये फैक्टरियां कपास उद्योग, कताई तथा बुनाई उद्योग, सोने चाँदी के अतिरिक्त अन्य धातुओं को चीजें बनाने, शस्त्रास्त्र उद्योग, भवन-निर्माण उद्योग, सरकारी टकसाल, दूध की चीजें बनाने तथा वन-सम्पदा का उपयोग करने के कारखाने होती थीं। मेगास्थनीज के अनुसार नगरों की फैक्टरियों पर सरकार की 'निगरानी' रहती थी। कौटिल्य ने बताया है कि ये निगरानी वे सरकारी अध्यक्ष रखते थे, जिन पर इन फैक्टरियों की निगरानी का दायित्व रहता था, जैसे सूत्राध्यक्ष, सौवर्णिक, कोटाध्यक्ष, लक्षणाध्यक्ष, कुप्याध्यक्ष आदि।

मेगास्थनीज ने इसके बाद नगर-अधिकारियों के एक ऐसे वर्ग का उल्लेख किया है, जिसके काम में मदिरालयों का नियंत्रण, नगर में बाहर से आनेवालों की देखभाल तथा उनकी चिकित्सा की व्यवस्था करना शामिल था। कौटिल्य ने विस्तारपूर्वक इस बात का वर्णन किया है कि नगर का प्रशासन इन कार्यों तथा अन्य कई कामों का भार संभालना था, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। स्वयं एक विदेशी यात्री होने के नाते मेगास्थनीज ने "अजनबियों" अथवा विदेश के लोगों के सम्बन्ध में नगर के कर्त्तव्यों का विशेष रूप से उल्लेख किया है। कौटिल्य ने इस दायित्व को नगर-प्रशासन के अन्य प्रासंगिक कामों में शामिल किया है।

मेगास्थनीज ने कामों की जिस तीसरी श्रेणी का उल्लेख किया है, उसका सम्बन्ध मृत्यु तथा जन्म का हिसाब रखने से है। कौटिल्य ने भी स्थानिक तथा गोप नामक अधिकारियों का उल्लेख किया है, जिनका काम यह था कि वे जनसंख्या की पूरी सूची रखें और मूलभूत महत्त्व के आंकड़ों का हिसाब रखने के अतिरिक्त नियमित रूप से जनगणना करें। इस काम के लिए अधिकारियों को घर-घर घूमना पड़ता था और इस उद्देश्य से नगर को अनेक मंडलों में विभाजित कर दिया जाता था।

मेगास्थनीज का ध्यान नगर-अधिकारियों के कामों की जिस चौथी श्रेणी की ओर आकृष्ट हुआ, उसे उसने "बाजार का नियंत्रण" कहा है। कौटिल्य ने बताया है कि इस काम के लिए एक विशेष अधिकारी होता था, जिसे पण्याध्यक्ष कहते थे।

इसके बाद मेगास्थनीज ने नगर-अधिकारियों द्वारा 'माप-तोल के मानदंडों के निरीक्षण' का उल्लेख किया है। कौटिल्य ने बताया है कि

यह काम एक विशेष अधिकारी के जिम्मे था, जिसे पौतवाध्यक्ष कहते थे।

मेगास्थनीज ने नगर-अधिकारियों के कामों की पाँचवीं श्रेणी का उल्लेख इन शब्दों में किया है—"तैयार माल का निरीक्षण करना, और नई तथा पुरानी चीजों में सही-सही अन्तर रखते हुए इस माल की बिक्री की व्यवस्था करना।"

ये सब काम नगर का वह अधिकारी करता था, जिसे कौटिल्य ने पण्याध्यक्ष कहा है। जैसा कि हम देख चुके हैं कि वह मूल्य पर, स्वदेशी तथा विदेशी दोनों प्रकार की चीजों के बाजारों पर, खाद्य-सामग्री पर और आयात तथा निर्यात पर नियंत्रण रखता था।

अन्त में मेगास्थनीज ने बिके हुए माल पर लगाये जाने वाले कर की वसूली से सम्बन्धित कामों का उल्लेख किया है। मेगास्थनीज तथा कौटिल्य ने बिके हुए माल पर उसके मूल्य के अनुसार कर वसूलने का उल्लेख किया है। अन्तर केवल यह है कि मेगास्थनीज ने लिखा है कि यह कर बिल्कुल नगण्य होता था, जबकि अर्थशास्त्र में 4 प्रतिशत से लेकर 20 प्रतिशत तक कर की विभिन्न दरों का उल्लेख किया गया है। ये कर वसूल करने का काम शुल्काध्यक्ष नामक अधिकारी के जिम्मे रहता था।

मेगास्थनीज ने "नई तथा पुरानी चीजों के बीच सही-सही अन्तर रखने" की जो बात कही है, उसका दायित्व कौटिल्य द्वारा उल्लिखित शुल्काध्यक्ष नामक अधिकारी पर रहता था। इस अधिकारी को इस बात का अधिकार था कि यदि कोई व्यापारी अपने माल की मात्रा अथवा उसका मूल्य कम बताए या कर देने से बचने के लिए अपने माल की वास्तविक कोटि को छिपाने के उद्देश्य से घटिया नमूना दिखाए तो वह उसे दंड दे सकता था। हम पहले इस बात का भी उल्लेख कर चुके हैं, कि मिलावट पर किस प्रकार दंड दिया जाता था।

मेगास्थनीज ने भारतवासियों को सात श्रेणियों में विभाजित किया है। इनमें पाँचवाँ स्थान मंत्रियों का है। अरियन के शब्दों में "यह योद्धाओं का वर्ग है जिनकी संख्या की दृष्टि से कृषकों के बाद दूसरा स्थान है, पर जो पूर्ण स्वतन्त्रता तथा आमोद-प्रमोद का जीवन व्यतीत करते हैं उन्हें केवल सैनिक कार्य करने पड़ते हैं। उनके

हथियार दूसरे लोग बनाते हैं, उन्हें घोड़े भी दूसरे लोगों से मिल जाते हैं, सेना के शिविर में उनकी देखभाल के लिए भी दूसरे लोग होते हैं, जो उनके घोड़े की देखभाल करते हैं, हथियार साफ करते हैं, उनके हाथी चलाते हैं, उनके रथ तैयार करते हैं और उनके रथों पर सारथी का काम करते हैं। जब तक आवश्यकता होती है वे युद्ध करते हैं, और जब शान्ति स्थापित हो जाती है, वे भोग-विलास में लिप्त हो जाते हैं। उन्हें राज्य की ओर से जो वेतन मिलता है वह इतना काफी होता है कि उसमें वे बड़ी आसानी से अपने अतिरिक्त दूसरों का भी भरण-पोषण कर सकते हैं।"

वैश्य तथा शूद्र : मेगास्थनीज की सूची में दूसरे, तीसरे तथा चौथे वर्ग वाले वैश्य और शूद्र हैं। दूसरा वर्ग कृषकों का है। जनसंख्या का अधिकांश भाग इसी वर्ग के लोगों का है और स्वभाव में ये लोग सबसे मृदु तथा सुशील होते हैं। वे दैनिक सेवा के दायित्व से मुक्त होते हैं, और निर्विघ्न होकर खेती करते हैं। वे शहरों में कभी नहीं जाते, न वहाँ की चहल-पहल में भाग लेने के लिए और न किसी अन्य काम से बल्कि अपने बाल-बच्चों सहित गाँवों में ही रहते हैं। भूमि जोतने वाले इन लोगों के काम हैं हल चलाना, अनाज उगाना, पेड़ों की देखभाल करना या फसल काटना।"

इसके बाद "वे व्यापारी होते हैं जो चीजें बेचते हैं और वे शिल्पकार, जो शारीरिक श्रम करते हैं। इनमें से कुछ युद्ध के हथियार बनाते हैं। कुछ जहाज बनाते हैं और कुछ नदियों में नावें चलाने के लिए मल्लाहों के रूप में नौकर रखे जाते हैं। उन्हें राजा की ओर से मजदूरी तथा खाने-पीने की सामग्री मिलती है और वे राजा के लिए ही काम करते हैं। वे कृषकों तथा अन्य व्यवसायों के लोगों के लिए उपयोगी औजार भी बनाते हैं।"

फिर आते हैं "शिकारी तथा चरवाहे, जो न शहरों में बसते हैं न गाँवों में, बल्कि तम्बुओं में रहते हैं और यायावरों जैसा जीवन व्यतीत करते हैं। केवल इन्हीं को शिकार करने और पशु पालने या किराये तथा भारवाहक पशु बेचने पर उन्हें दूसरों को देने की अनुमति होती है। शिकार करके और पशुओं को पकड़कर वे गाँवों को जंगली पशुओं तथा पक्षियों तथा उन हानि-कारक जीव-जन्तुओं से मुक्त कर देते हैं, जो वहाँ बहुत बड़ी संख्या में पाये जाते, वे गाँवों को उन जंगली पशु-पक्षियों से

मुक्त कर देते हैं, जो कृषकों द्वारा खेतों में बोये गए बीज खा जाते हैं। इन सेवाओं के बदले उन्हें राजा की ओर से अन्न के रूप में पारिश्रमिक मिलता है।

व्यवसाय : मेगास्थनीज ने अपनी सूची में छठे तथा सातवें स्थान पर जिन वर्णों का उल्लेख किया है वे वास्तव में वर्ण हैं नहीं। उसने वर्ण और शिल्प अथवा व्यवसाय को एक में मिला दिया है। इन दो वर्णों में वास्तव में विभिन्न श्रेणियों के राजकर्मचारी आते हैं।

सूचना देने वाले : छठी कोटि में वे लोग आते, जिन्हें 'ओवरसियर' अर्थात् सूचना देनेवाला कहा गया है।

परामर्शदाता : सातवीं कोटि में वे लोग आते हैं, जिन्हें परामर्शदाता तथा असेसर कहा गया है, जो "सार्वजनिक समस्याओं पर विचार-विमर्श करते हैं और शासन के सर्वोच्च पदाधिकारी-न्यायाधीश, राजा के मन्त्री, सेनापति, मुख्य दण्डाधीश इसी वर्ग के लोग होते हैं।

आरियन के कथनानुसार : "इस सातवीं कोटि में राज्य के मंत्रीगण आते हैं, जो राजा को यास्वशासित नगरों को सार्वजनिक समस्याओं को हल करने के बारे में परामर्श देते हैं और राष्ट्र-मुख्य, प्रांतपालों, उप-राष्ट्रमुख्यों, राजकोष के अध्यक्षों, सेना के सेनानायकों, नौ-सेना के के सेनापतियों, कृषि की देखभाल करनेवाले नियंत्रकों तथा आयुक्तों को चुनने का अधिकार उन्हीं को होता है।"

यह बात ध्यान देने योग्य है कि मेगास्थनीज ने जिन लोगों की गणना चरवाहों तथा शिकारियों में की है उनका उल्लेख अर्थशास्त्र में गोपालकों, लुब्धकों तथा आटविकों और कृषि, पशुओं तथा चारागाहों के अध्यक्षों के अधीन काम करनेवाले अन्य कर्मचारियों के रूप में किया गया है, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है।

"हथियार बनाने वालों" के बारे में यह कहा गया है कि वे आयुधागाराध्यक्ष के विभाग में काम करते थे, और 'जहाज' बनाने वालों को नावाध्यक्ष के अधीन बताया गया है।

मेगास्थनीज ने जिन पदाधिकारियों को ओवरसियर तथा परामर्शदाता कहा है उनका उल्लेख कौटिल्य ने गूढ़-पुरुषों अमात्यों तथा विभिन्न दूसरे अध्यक्षों के रूप में किया है।

सौन्दर्य-प्रसाधन

प्रसाधन का विशेष महत्त्व था। राजाओं का जीवन विलासमय था। उनके उपयोग की प्रसाधन-सामग्रियाँ देश के भिन्न-भिन्न भागों से लाई जाती थीं। मुक्ता एवं बहुमूल्य रत्न दक्षिण से तथा सुवासित चन्दन,

अगरु, लोहबान और गुग्गुल आदि अनम, दक्षिणभारत तथा समुद्र पार देशों से लाये जाते थे ।

प्रसाधन तथा वस्त्रों के परिचारकों का समुदाय स्नान द्वारा अपने शरीर की सफाई करता था । स्नान के पश्चात् नये वस्त्र पहन कर ही वे राजा के लिए वस्त्र एवं प्रसाध-सामग्री प्रस्तुत करते थे । स्नानगृह-परिचारिका के कर्त्तव्यों में स्वच्छता तथा पुष्पों की मालाएँ बनाना भी सम्मिलित था । नृत्यांगनाएँ अभिनयकला में निपुण होने के साथ-साथ अन्य कलाओं का भी ज्ञान रखती थीं । वे माला तथा सुगन्धि बनाने और मालिश करने की शिक्षा भी प्राप्त करती थीं । दरबारियों के साथ सेवकगण भी राजा को जल, इत्र, सुवासित चूर्ण, वस्त्र एवं मालाएँ प्रदान करते समय सर्वप्रथम उन्हें अपने नेत्र, बाहु तथा सीने से लगाते थे । राजा मालिश का प्रेमी होता था । उसके मालिश के लिए एक विशेष समय निश्चित था । मेगास्थनीज ने एक खुले स्थान पर पर राजा के शरीर को परिचारिकाओं द्वारा आबनूस की लकड़ी से बने पोले और बेलनाकार उपादान से रगड़ने का उल्लेख किया है । तक्षशिला, त्रिपुरी, भीटा जैसे पुरातात्विक स्थलों से शरीर साफ करने के उपादानों की प्राप्ति से इनकी प्रामाणिकता सिद्ध होती है । सम्भवत: इस युग में हम्मामों का भी प्रचलन था । राजमहल के अहाते में कुएं तथा स्नानागार के लिए भी स्थान था ।

इस युग में सुवासित लकड़ियों एवं राल की बहुत मांग थी । राजाओं के विलासमय जीवन में प्रसाधन एवं सुगन्धि का प्रयोग प्रमुख था । सुगन्धित धूप और चन्दन की लकड़ी बहुमूल्य सामग्री समझी जाती थी । इसी कारण इन्हें राजकीय कोषागार में बहुमूल्य रत्नों के साथ रखा जाता था । यह सामग्री दूर-दूर से लायी जाती थी और इनके लाने में पर्याप्त धन खर्च होता था । इस कारण इनका मूल्य भी बहुत अधिक होता था । सुगन्धित लकड़ियों एवं राल के नाम उनके प्राप्ति स्थानों के नामों के आधार पर होते थे । इस प्रकार ये सामग्रियाँ तत्कालीन भौगोलिक ज्ञान की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं ।

स्त्रियाँ मुख्य रूप से एड़ी तक पहुँचती हुई साड़ी, आस्तीन वाले कञ्चुक और दोनों कन्धों को ढंकते तथा एड़ी तक लटकते उत्तरीय धारण करती थीं । कभी-कभी उत्तरीय का एक छोर कमर पर खोंस लिया जाता था । उत्तरीय को उमेठे हुए कमरबन्ध की सहायता से कमर के दोनों ओर फन्दे बनाते हुए भी बाँधा जाता था ।

स्त्रियाँ घाघरा अथवा लहँगा भी पहनती थीं। सम्भवतः तत्कालीन ग्वालिनों में लहँगा पहनने का प्रचलन था। जमालपुर (मथुरा से मिली एक स्त्री मृण्मूर्ति से सिर पर कलश लिए ग्वालिन जैसी आकृति को लहँगा पहने दिखाया गया है। गन्धार की उच्चवर्ग की स्त्री आकृतियों में भी इस वस्त्र का प्रचलन था। विदेशी स्त्रियाँ चुन्नटदार घाघरा पहनती थीं। कुषाण सिक्कों पर नना देवी को घाघरा जैसा वस्त्र पहने दिखाया गया है। कञ्चुक साड़ी के ऊपर या नीचे दोनों ही रूप में पहना जाता था। शक अथवा ईरानी स्त्रियों को कभी-कभी कामदार कञ्चुक पहने दिखाया गया है। जमालपुर से प्राप्त एक वेदिका स्तम्भ पर, जो अब राज्य संग्रहालय, लखनऊ में है, धूपदान लेकर जाती हुई स्त्री आकृति को पैरों तक पहुँचते हुए कञ्चुक से युक्त दर्शाया गया है। इन उदाहरण से स्पष्ट है कि लम्बे कञ्चुक पहनने की भी प्रथा थी। इस काल में पुष्पपट नाम के वस्त्रों का भी प्रचलन था। जमालपुर के टीले से प्राप्त स्त्री आकृति सम्भवतः इसी वस्त्र से बना कञ्चुक पहने है। राजा की अंगरक्षिका का कार्य करनेवाली विदेशी स्त्रियाँ घुटने तक पहुँचता कञ्चुक पहनती थीं।

साधारणतया स्त्रियों में सिर ढकने की प्रथा नहीं थी। केवल कुछ स्त्री आकृतियों को पीछे लहराते उत्तरीय के साथ दिखाया गया है। पाटलिपुत्र से प्राप्त एक मृण्मूर्ति में उत्तरीय से सिर के साथ ही आकृति के शरीर का सम्पूर्ण ऊपरी भाग भी ढँका है। परिचारिकाएँ लट्टूदार उष्णीव पहने भी प्रदर्शित हैं। कभी-कभी स्त्रियाँ भारी काम वाले मुकुट भी पहनती थीं। विदेशी स्त्रियाँ यूनानी पहनावे के साथ कुलाहदार टोपी पहने भी प्रदर्शित हैं। कौशाम्बी से मिली एक स्त्री आकृति को सिर पर लम्बी और भारी टोपी पहने दिखाया गया है। इसे देखने से ऐसा प्रतीत होता है मानो इसमें रूई भरी हो। स्त्रियाँ कभी-कभी स्तनपट्ट भी धारण करती थीं।

मौर्यकालीन केश-विन्यास से सम्बन्धित जानकारी मुख्यतः बुलंदीबाग, लौरियानन्दनगढ़, कुम्हरार, पाटलिपुत्र, बक्सर तथा मथुरा आदि स्थलों से प्राप्त पुरातात्त्विक सामग्री से मिलती है। मौर्य संस्कृति के इन केन्द्रों पर हमें प्रचुर संख्या में मृण्मूर्तियाँ और पाषाण प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं जिनसे तत्कालीन स्त्री-पुरुषों के केश-विन्यास का परिचय मिलता है। उल्लेख्य है कि इस काल में केश-विन्यास से सम्बन्धित साहित्यिक प्रमाण अत्यल्प हैं।

मृण्मूर्तियों और पाषाण प्रतिमाओं में मुख भाग विशेष रूप से अलंकृत है। पाटलिपुत्र से प्राप्त एक पुरुष मृण्मूर्ति में केशों को बायीं ओर इकट्ठा करके श्रृंग के आकार की केश-रचना की गयी है। मोतीचन्द्र ने इसे उष्णीष की एक शैली माना है जो ठीक नहीं जान पड़ता। कुछ उदाहरणों में जूड़ा दाहिनी ओर भी बनाया गया है, जिसके बायीं ओर श्रृंग जैसा आकार बना है। पाटलिपुत्र से मिली एक अन्य मुखाकृति में कुछ भी परिवर्तन के साथ इसी प्रकार का केश-विन्यास प्रदर्शित है। इसमें केशों को सिर के बायीं ओर एक चपटे जूड़े में लपेटा गया है जिसकी गांठ भारी और चौड़ी है। देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि केश-विन्यास का यह प्रकार अलग से बनाकर रख दिया गया है! इसी प्रकार मथुरा से मिली एक पुरुष मुखाकृति में भी केश-विन्यास का यही रूप मिलता है, किन्तु यहाँ उष्णीष जैसी गाँठ भी लगायी गयी है। केश-विन्यास की यह शैली भरहुत, साँची तथा बोधगया की मूर्तियों में प्रदर्शित उष्णीष जैसी है। पुरुषों के केशों को सीमन्त द्वारा विभक्त करके सँवारने का प्रचलन था। कुछ मुखाकृतियों में केश पीछे की ओर सँवारे तथा सिर पर एक पट्टिका से बांध्रे गये हैं, कुछ में उन्हें सिर पर गुच्छों के रूप में भी सँवारा गया है।

स्त्रियों में केश-विन्यास की अपेक्षाकृत अधिक शैली प्रचलित थी। रूपड़ से मौर्य-काल की एक तश्तरी जैसी वस्तु प्राप्त हुई है जिस पर सम्भवतः आदिति की आकृति उत्तीर्ण है। अदिति के घने और घुँघराले केश दोनों ओर लटकते दिखाये गये हैं और उनके छोर पूर्णतया गोल हैं। एक स्त्री-आकृति में पीछे की ओर गोल जूड़ा है जो सम्भवतः किसी फीते से बंधा हुआ है। दूसरी स्त्री-आकृति में पीछे लम्बी वेणी लटक रही है। पाटलिपुत्र से सिर पर आवरणयुक्त एक स्त्री मृण्मूर्ति भी प्राप्त हुई है। इस आवरण के कारण उसके केश-विन्यास की शैली स्पष्ट नहीं है किन्तु इसके बाह्य रूप से प्रतीत होता है कि केशों को सिर के ऊपर इकट्ठा करके उसमें कुछ कोणाकार तथा भारी गाँठें लगा दी गयी हैं।

पटना से मिली और सम्प्रति पटना संग्रहालय में सुरक्षित एक स्त्री मृण्मूर्ति में केश-विन्यास की विशेष शैली परिलक्षित होती है। इसमें केशों को सँवारकर माथे पर कटे हुए केशों की चोटियाँ बनायी गयी हैं। गोर्डन द्वारा वर्णित एक स्त्री मृण्मूर्ति भी केश-विन्यास की दृष्टि से महत्त्व का है। इस मृण्मूर्ति के केश कनलगट्टे जैसे तीन आकृतियों में सँवारे गये हैं। पाटलिपुत्र से मिली बालक की मुखाकृति (पटना संग्रहालय) में केशों

को सिर के ऊपर इकट्ठा किया गया है किन्तु उसमें गाँठ नहीं लगाई गई है। इसमें केशों को दो भागों में बाँटकर एक को दूसरे के ऊपर रख दिया गया है। मौर्यकालीन प्रमुख पाषाण-मूर्तियाँ पटना, परावम, पवाया, बेसनगर तथा दीदारगंज से मिली हैं। इनमें केवल यक्ष-यक्षी की ही आकृतियाँ हैं। दीदारगंज-यक्षी के केश-विन्यास में वर्तमान जूड़े का रूप देखने को मिलता है। केशों को पीछे की ओर गर्दन पर कुछ लम्बे रूप से लपेटकर रखा गया है। केशों के कुछ भाग आकर्षक रूप में लटके भी दिखाये गये हैं। ऐसा लगता है कि केशों को दाहिनी ओर से बायीं ओर चार भागों में विभक्त करके जूड़े में लपेटा गया है। इसमें चार वेणियाँ भी स्पष्ट रूप से दिखायी देती हैं। सीमन्त से पीछे तक केशों को मोती की लड़ी से अलंकृत किया गया है। इस आभूषण की तुलना बाण के चतुलतिलकमणि या भरत के चूड़ामणि से की जा सकती है। बेसनगर-यक्षी मूर्ति में भी केशों को सीमान्त द्वारा दो भागों में विभक्त कर, सीमान्त से अन्त तक दोनों ओर केशों की महीन-महीन वेणियाँ बनायी गयी हैं। सम्भवतः इन वेणियों को पीछे ले जाकर ढीले जूड़े के रूप में लपेट दिया गया है। केशों की ये वेणियाँ कानों को ढँकती हुई पीछे की ओर ले जायी गयी हैं। आगे की सबसे पहली वेणी अन्य वेणियों की अपेक्षा कुछ मोटी है। महीन वेणियाँ बनाने की प्रथा आगे शुंग-काल में भी प्रचलित थी। भीटा से मिले एक उदाहरण में स्त्री के केश सीमान्त द्वारा विभक्त होकर पीछे की ओर स्वतन्त्र रूप से लटक रहे हैं। इसमें केशों को कानों के पीछे सँवारा और आभूषण से अलंकृत किया गया है। इस उदाहरण में पुरुष आकृति के केश आगे से पीछे की ओर सामान्य रूप में सँवारे गये हैं। इन केशों को माथे पर एक फीते से बाँधा गया है और उसमें बायें कान के ऊपर सुन्दर गाँठ भी लगायी गयी है। पटना की यक्ष मूर्ति में केशों को सिर के बायीं ओर सँवारकर इकट्ठा किया गया है और उनका साधारण जूड़ा बनाया गया है। परमख-यक्ष प्रतिमा में केशों को मध्य से दो भागों में विभाजित किया गया है। यहाँ केश लहरदार और कन्धे पर स्वतंत्र रूप से लटक रहे हैं। कन्धे पर लटकते केश ऊपर की ओर मुड़े हुए प्रतीत होते हैं।

मौर्यकालीन आभूषणों का ज्ञान प्राप्त करने में साहित्य की अपेक्षा मूर्त सामग्री अधिक सहायक रही है। इस दृष्टि से मौर्यकालीन मृण्मूर्तियों एवं पाषाण-प्रतिमाओं का विशेष महत्त्व है। इनके अतिरिक्त यूनानी लेखकों के यात्रा-विवरण भी तत्कालीन आभूषणों से सम्बन्धित जानकारी में सहायक हैं। मेगास्थनीज ने ब्राह्मणों द्वारा गृहस्थ जीवन में अंगुलियों और कानों में सोने के आभूषण धारण करने का उल्लेख किया है। एरियन ने हाथी-दाँत की बालियाँ पहनना सम्पन्न लोगों का एक लक्षण बताया है।

स्ट्रेबो ने भी तत्कालीन नागरिकों के आभूषण प्रेम के विषय में लिखा है।

यद्यपि अर्थशास्त्र में तत्कालीन जीवन पर विस्तारपूर्वक चर्चा है किन्तु आभूषणों से सम्बन्धित उल्लेख अत्यल्प हैं। कौटिल्य ने केवल दो [illegible] आभूषणों का ही वर्णन किया है। कई लड़ियों वाले [illegible] आकार-प्रकार के ये आभूषण मुक्ता अथवा अन्य रत्नों से बनाये [illegible] होते थे। अर्थशास्त्र में मुक्ता की उत्पत्ति [illegible] की चर्चा की गयी है। इसी प्रकार [illegible] एवं उनके [illegible] भी इसमें वर्णित हैं।

अर्थशास्त्र में मोतियों की मालाओं के शीर्षक (जिसमें छोटी मोतियों के बीच में एक बड़ा मोती पिरोया गया हो) उपशीर्षक (जिसमें दो छोटे मोतियों के बाद एक बड़ा मोती हो), प्रकाण्डक (जिसमे चार छोटे मोतियों के बाद एक बड़ा मोती हो), अवघाटक (जिस माला के बीच में एक बड़ा मोती और उसके दोनों ओर उत्तरोत्तर छोटे-छोटे मोती हों) और तरल प्रतिबन्ध (जिसमें सभी मोती एक समान लगे हों) आदि नाम मिलते हैं। इसी प्रकार विभिन्न लड़ियों वाली माला के भी अलग-अलग नाम थे। एक हजार आठ लड़ियों वाली माला को इन्द्रच्छन्द, पाँच सौ लड़ियों वाली माला को विजयछन्द, सौ लड़ियों वाली माला को देवच्छन्द, चौंसठ लड़ियों वाली माला को अर्द्धहार, चौवन लड़ियों वाली माला को नक्षत्रमाला, चौबीस लड़ियों वाली माला को अर्धगुच्छ, बीस लड़ियों वाली माला को माणवक और दस लड़ियों वाली माला को अर्ध-माणवक कहा जाता था। इन्हीं मालाओं के बीच में यदि मणि पिरो दी जाती थी तो उनके नाम के आगे माणवक शब्द जुड़ जाता था। यदि इन्द्रच्छन्द और विजयछन्द नाम की मालाओं में सभी मोती शीर्षक के समान पिरोये जाते थे तो उन्हें क्रमशः इन्द्रच्छन्द-शीर्षक-शुद्ध हार और विजयछन्द-शीर्षक-शुद्ध हार कहा जाता था। इसी प्रकार यदि इन्द्रच्छन्द में सभी मोती उपशीर्षक के समान पिरोये जाते थे तो उसे इन्द्र-छन्दोपशीर्षक-शुद्ध हार कहा जाता था। यदि शुद्ध हारों के मध्य में मणि पिरो दी जाती थी तो वे अर्द्धमाणवक कहलाते थे और उनका पूरा नाम इन्द्रच्छन्द-शीर्षकार्धमाणवक होता था। दस लड़ियों की माला में यदि सोने के तीन या पाँच दाने पिरो दिये जाते थे तो उसे फलकहार कहा जाता था। एक

लड़ी की मोती की माला का नाम सूत्र था। यदि सूत्र के मध्य में मणि पिरो दी जाती थी तो उसे यष्टि कहा जाता था। सोने के दानों और मणियों से पिरोकर बनायी गयी माला रत्नावली कहलाती थी। यदि किसी माला में सोने के दाने, मणि और मोती क्रमशः पिरो दिये जाते थे तो उसे अपवर्त्तक कहते थे। अपवर्त्तक माला में मणि का प्रयोग न होने पर उसे सोवनक कहा जाता था। मध्य में मणि लगी होने पर उसे मणि-सोवानक कहते थे। प्रस्तुत वर्णन से स्पष्ट है कि अधिकांशतः गले में पहनी जानेवाली मालाएँ मोतियों से ही बनायी जाती थीं।

आभूषण बनाने की तीन मुख्य शैलियाँ क्षेपण, गुण एवं शुद्र थीं। सोने पर जड़ाऊ के काम को क्षेपण, लड़ियाँ बनाकर या गूँथकर बनाये गये आभूषण को गुण और ठोस आभूषण बनाने की शैली को घन तथा पोले आभूषण बनाने की शैली को सुशिर कहते थे।

पुरातात्विक उत्खननों से तत्कालीन आभूषणों के बहुत कम उदाहरण प्राप्त हुए हैं। पाटलिपुत्र से तांबे के कुछ आभूषण मिले हैं। इसी प्रकार उड़ीसा के तोबलि तथा भुवनेश्वर (धौली और शिशुपालगढ़) से भी मिट्टी के आभूषण मिले हैं। ये आभूषण पदक के समान हैं। सम्भवतः ये हार में लटकन के रूप में प्रयुक्त होते थे। इन्हीं स्थलों से कर्णफूल जैसे कर्णा-भूषण भी मिले हैं।

आभूषण सम्बन्धी ज्ञान प्रदान करने की दृष्टि से यक्ष और यक्षिणियों की पाषाणप्रतिमाएं विशेष महत्व की हैं। इनमें दीदारगंज यक्षी मूर्ति सर्वप्रमुख है। अन्य प्रतिमाओं में बेसनगर यक्षी परखम (मथुरा) यक्ष एवं पटना के समीप से प्राप्त यक्ष आकृतियाँ मुख्य हैं। इन प्रतिमाओं में आभूषण बहुत कुछ एक-दूसरे के समान हैं। इन आकृतियों में सामान्य कर्णाभूषण, हार, केयर, भुजबन्ध, मेखला, नूपुर आदि आभूषण प्रदर्शित हैं।

दीदारगंज यक्षी के माथे पर छोटी-छोटी मुक्ताओं से बना एक विशेष प्रकार का शिरोभूषण प्रदर्शित है। यह आभूषण तीन लड़ियों वाला है जिसकी एक लड़ी केशों के मध्य सीमान्त को सुशोभित करती हुई पीछे की ओर चली गयी है और बाकी दो लड़ियां माथे के चारों ओर होती हुई सिर के पीछे जाकर मध्य की पहली लड़ी से मिल गयी हैं। सामने की ओर माथे पर कोई गोल पदक जैसी वस्तु भी लगी है जिसके ऊपर का भाग कोणाकार है। अन्य किसी समकालीन पाषाण-

प्रतिमा में यह आभूषण नहीं दिखाई देता किन्तु उत्तर भारत में आज भी स्त्रियों में यह आभूषण सीथि नाम से प्रचलित है। तत्कालीन मृण्मूर्तियों से सम्भवतः यह आभूषण छोटे-छोटे पुष्पों के गुच्छों जैसी आकृतियों के रूप में दिखाया गया है। दीदारगंज यक्षी के कानों में दो भागों में विभाजित एक विशेष प्रकार का आभूषण है जिसका ऊपरी भाग किसी गोल पात्र के ऊपरी भाग के समान गोलाकार है तथा नीचे का भाग नागर शैली के मन्दिर के शिखर के आकार का है। ये दोनों भाग पतले तार के समान किसी माध्यम से आभूषण पहनने के स्थान पर जुड़े हुए हैं। पटना में हुए पुरातात्त्विक उत्खनन से भी ताँबे का एक इसी प्रकार का आभूषण मिला है। दीदारगंज यक्षी के गले में गोलाकार मुक्ताओं से बनी एक लड़ी वाली दो मालाएँ हैं, जिनमें से एक लम्बी और नाभि तक पहुँचती हुई है तथा दूसरी गले से लगी और छोटी है। यक्षी के हाथ चूड़ियों से अलंकृत हैं, जिसमें अन्तिम चूड़ी नलिकाकार है। पैरों में अलंकृत किन्तु भाटी नलिकाकार आभूषण हैं।

कमर में पहना जाने वाला आभूषण मनकों से निर्मित और कई लड़ियों वाला होता था। दीदारगंज यक्षी की मेखला पाँच लड़ियों वाली है। इसमें अलंकृत मनकों का प्रयोग हुआ है। बेसनगर यक्षी के माथे पर चक्राकार आभूषण दिखायी देता है। यक्षी की मेखला भी पाँच लड़ियों वाली ही है। ऊपर की चार लड़ियाँ धारीदार नमूनेवाले मनकों की और नीचे की अन्तिम लड़ी गोल पुष्पों के समूह के टीकरों की कतारवाली है। गले में सम्भवतः मोतियों की माला, कानों में कुण्डल एवं पैरों में नूपुर प्रदर्शित हैं।

पुरुष भी माथे पर आभूषण धारण करते थे जिसकी पुष्टि यक्ष आकृतियों से होती है। यक्ष आकृतियाँ भाटे नलिकाकार कुण्डल, कंठा, हार तथा उदर भाग में भी आभूषण से युक्त हैं। परखम यक्ष-मूर्ति में सात लड़ियों वाली एक विशेष प्रकार की माला दिखायी देती है। धातु द्वारा अर्द्धचन्द्राकार ठोस मालाएँ भी बनायी जाती थीं जिसका उदाहरण हम पटना की यक्ष आकृति में देख सकते हैं। अर्द्धचन्द्राकार माला की सतह कमल के पुष्पों के नमूने से अलंकृत है। यह आभूषण सम्भवतः गले के पीछे एक डोरी की सहायता से बंधा रहता था।

पटना की यक्ष आकृति में कलाई पर कंगन तथा बाहु पर कसा

भुजबन्ध दिखायी देता है। यह आभूषण रस्सी जैसा है और इसके दोनों सिरों पर सिंह मुखाकृति बनी है। भुजबन्ध का प्रचलन आज भी उत्तर भारत में मिलता है। मौर्य-कालीन फलक की एक स्त्री आकृति को भी ऐसा ही भुजबन्ध पहने दिखाया गया है।

मृण्मूर्तियों में प्राप्त कुछ प्रमुख आभूषण छोटी पुष्पाकृतियों की पंक्ति से युक्त माथे की पट्टिका, भारी और बड़े कर्णाभूषण एवं मेखला तथा विभिन्न आकार के कंगन, भुजबन्ध एवं नूपुर थे। कौशाम्बी से प्राप्त एक स्त्री मृण्मूर्ति का सिर दो लड़ियों वाली मुक्तावली से अलंकृत है। इसके कानों में झूलते हुए कर्णाभूषण और गले में हार है। एक अन्य स्त्री आकृति के गले में मुक्ता-जटित लटकन-युक्त हार प्रदर्शित है। इस आकृति में छन्नवीर भी द्रष्टव्य है। मस्तक-विहीन एक स्त्री मृण्मूर्ति के गले में कण्ठा, हार एवं हाथों में भुजबन्ध, कंगन और कमर पर तीन लड़ियोंवाली मेखला दिखायी गयी है।

❁

अध्याय—3

शुंग, कुषाण एवं गुप्तकालीन पाटलिपुत्र

मौर्यों के बाद शुंगों की राजधानी पाटलिपुत्र में रही। ई० पू० दूसरी सदी में बलख के यूनानियों ने पाटलिपुत्र पर धावा बोल दिया, जो उस काल के महापन की एक बड़ी घटना थी। मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद वहाँ की राजनीतिक अवस्था का लाभ उठाकर बलख के राजा दिमित्र ने हिन्दूकुश को पारकर भारतवर्ष पर चढ़ाई की। यह आक्रमण इसके पूर्व के सिकन्दर के आक्रमण से भिन्न था। सिकन्दर ने पश्चिमी पंजाब तक ही अपने आक्रमण को सीमित रखा लेकिन बलख के यूनानी पाटलिपुत्र तक पहुँच गए। इस आक्रमण का सही-सही समय तो निश्चित नहीं किया जा सकता, लेकिन श्री टार्न का मत है कि शायद यह चढ़ाई ईसा पुव 175 में हुई होगी।

दिमित्र के साथ उसका प्रसिद्ध सेनापति मिलिन्द भी था। वे बलख से तक्षशिला आए और उसे अधिकृत करने के बाद उनकी सेना दो रास्तों से आगे बढ़ी। एक रास्ता वहाँ से पंजाब, दिल्ली होता हुआ पाटलिपुत्र आता था और दूसरा रास्ता सिंधु नदी के साथ साथ उसके मुहाने तक चला जानेवाला था। मिलिन्द ने दक्षिण-पश्चिम रास्ते से आगे बढ़कर साकल को अधिकृत किया। 'युगपुराण' के अनुसार यवनसेना मथुरा, साकेत और बाराणसी होती हुई पाटलिपुत्र पहुँची। इधर उसकी सेना की एक शाखा अपोलोडोटस के नेतृत्व में सिंधु क्षेत्र में रह गयी। अपोलोडोटस ने कच्छ, सुराष्ट्र, भरुकच्छ आदि के क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। भरुकच्छ पर अधिकार कर लेने से दो लाभ मिले। एक तो भारत का बहुत बड़ा बंदरगाह, जिसका पश्चिम के देशों के साथ व्यापारिक संबंध था, उसके हाथ में आ गया और दूसरा कि उसी जगह से वह उज्जैन, विदिशा, कौशाम्बी और पाटलिपुत्र वाली सड़क पर जम गया। इस प्रकार उसने तक्षशिला, भरुकच्छ, उज्जैन और इसके साथ पाटलिपुत्र

पर भी अधिकार कर लिया। श्री टार्न का मत है कि दिमित्र तक्षशिला में बैठकर अपोलोडोटस और मिलिन्द को उज्जैन और पाटलिपुत्र का शासक बनाकर पूरे भारतवर्ष पर राज्य करना चाहता था। लेकिन वह कुछ ही समय तक पाटलिपुत्र का राजा बना रह सका। पाटलिपुत्र से उसके हटते ही उसे दोआब भी छोड़ना पड़ा और पाटलिपुत्र और साकेत पर शुंगों का अधिकार हो गया। 'युगपुराण' में भी पाटलिपुत्र पर यवनों के आक्रमण की चर्चा मिलती है। डॉ० अवधकिशोर नारायण इसके श्लोकों का विश्लेषण करते हुए आगे बतलाते हैं कि पांचालों और माथुरों के साथ मिलकर यवनों ने पाटलिपुत्र पर चढ़ाई की थी। बाद में उनमें आपस में ही लड़ाई हो गयी और उन्हें लौटना पड़ा।

इसी समय यूनानी मेनेन्डर ने साकेत और पाटलिपुत्र तक पहुँचकर इन क्षेत्रों को आक्रान्त कर डाला किन्तु पुष्यमित्र शुंग ने उसे परास्त कर इन दोनों नगरों में शासन स्थापित किया। इस विजय के उत्साह में उसने अश्वमेध यज्ञ किया जिसका पौरोहित्य-कर्म पतंजलि ने किया। अश्वमेध यज्ञ में छोड़े गए अश्व की रक्षा के लिये पुष्यमित्र शुंग ने अपने किशोर पौत्र वसुमित्र को नियुक्त किया जिसने ग्रीक सेना को सिंधु तट पर पछाड़ा था। इसकी सूचना एक पत्र में स्वयं पुष्यमित्र शुंग ने विदिशा नगरी में स्थित अपने पुत्र अग्निमित्र के पास भेजी थी। मिलिन्द पन्हो से पता चलता है कि नागसेन का जन्म बिहार प्रदेश के कंजगाल क्षेत्र (संथाल परगना) में हुआ था। इनके पिता का नाम सोणुत्तर था। नागसेन की शिक्षा शुंगों की राजधानी पाटलिपुत्र के अशोकाराम विहार में हुई थी। बौद्धधर्म की प्राथमिक शिक्षा समाप्त कर नागसेन जब पाटलिपुत्र में उच्च शिक्षा के लिए आ रहे थे तो रास्ते में पाटलिपुत्र का एक व्यापारी मिला जो बौद्ध भिक्षु जानकर उन्हें अपनी बैलगाड़ी पर बिठाकर लाया और पुनः अशोकाराम में पहुँचा दिया। पुष्यमित्र के नगर में ही बौद्धों की देश-विख्यात शिक्षा-संस्था अशोकाराम विहार का अस्तित्व कैसे संभव था? धर्मरक्षित जैसे बौद्धधर्म के प्राचार्य पाटलिपुत्र में बौद्धधर्म की शिक्षा क्या देते, उनके तो प्राणों के लाले पड़े होते? इसके अतिरिक्त भी उस काल के अनेक बौद्ध विद्वानों का पता चलता है, जो पूर्ण स्वच्छन्द होकर बौद्ध-धर्म का प्रचार करते चलते थे। इन विद्वानों में सोगणगुप्त, अश्वगुप्त, महा उपासिका (भिक्षुणी), आयुपाल आदि प्रमुख धर्म-प्रचारक थे। इनके अस्तित्व और धर्माचार का पता हमें "मिलिन्द पन्ह" जैसे बौद्ध ग्रन्थ से ही

होता चलता है। पाटलिपुत्र के बाद शुंगों की दूसरी राजधानी "विदिशा" नगरी थी। पाटलिपुत्र के कुम्हरार स्थान की खुदाई में विहारों के जो अवशेष प्राप्त हुए हैं, वे कुशाणकालीन विहार-निर्माण-कला से भिन्न तथा पूर्वकालिक बतलाये गये हैं। साथ ही पुरातत्त्ववेत्ताओं ने उन्हें मौर्यकाल का नहीं, शुंगकाल का कहा है।

शुंगकाल के कला-केन्द्र श्रावस्ती, भीटा, कौशाम्बी, मथुरा, बोधगया, पाटलिपुत्र, भरहुत, साँची, अयोध्या आदि स्थानों में अवस्थित थे, जो बौद्धधर्म के भी केन्द्र थे। मथुरा में शुंगकाल की उत्कीर्ण अनेक मूर्तियाँ मिली हैं। शुंगकाल में सारनाथ में भी वेदिका का निर्माण हुआ था, जिसमें अश्वघोष नामक विद्वान का बड़ा हाथ था, और जिसके भव्य-निर्माण का श्रेय मगध के पाटलिपुत्र नगर को ही है।

कुषाण शासक विम कडफिस ने, जिसका राज्य मध्य एशिया में था, सिन्ध देश को जीत लिया और टॉमस के अनुसार उसने मथुरा पर भी अधिकार कर लिया। सिक्कों के आधार पर तो विम का राज्य पाटलिपुत्र तक था।

कुषाण शासक कनिष्क ने पाटलिपुत्र पर आक्रमण किया। उस समय पाटलिपुत्र की आबादी लगभग नौ लाख थी। इस नगर का व्यापारिक महत्व अभी भी काफी था और विजेता कनिष्क ने नौ लाख स्वर्णों की मांग की। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि प्रति व्यक्ति से एक सोने का टुकड़ा उसने प्राप्त किया। पाटलिपुत्र के साथ-साथ इस नगर को कुसुमपुर भी कहा जाता था। सम्भवतः कनिष्क के समय पाटलिपुत्र का शासक राजा मुरूण्ड था। पाटलिपुत्र पर महाराज्यपाल और राज्यपाल कन्सपर ने सारनाथ में बैठकर नियन्त्रण स्थापित किया था। तीसरी शताब्दी में पाटलिपुत्र का शासक सम्भवतः विश्वसनी नामक शासक था। मौर्यकाल में पाटलिपुत्र जहाँ बड़े पैमाने पर लकड़ी की दीवारों से घिरा था वहाँ कुषाण-काल में ईंट की बनी दीवारों से घेरा गया। कुषाण कालीन आग में पकाए ईंट यहाँ खुदाई में मिले हैं।[1] खुदाई से प्राप्त सामग्रियों के अध्ययन से पता चलता है कि अधिकतर मकान एक मंजिले होते थे। इस काल के बौद्ध बिहार, चैत्य और स्तूप भी पाए गए हैं।

---

1. कामेश्वर प्रसाद, "द कुषाण आक्युपेशन ऑफ पाटलिपुत्र" पटना थ्रू द एजेज (सं) कयामुद्दीन अहमद, पटना, 1988, पृ० 15-21

महायान का उन्नायक अश्वघोष साकेत का रहनेवाला था या पाटलिपुत्र का, इसमें विवाद है। किन्तु अश्वघोष ने पाटलिपुत्र के "अशोकाराम विहार" में बौद्धधर्म की दीक्षा ली थी और यहाँ के किसी राजा के दरबार में रहकर वह बौद्धधर्म के विकास में दत्तचित्त था, इस सम्बन्ध में किसी की भी दो राय नहीं है। इस तरह अश्वघोष को ज्ञान तथा कर्म के क्षेत्र में प्रवेश कराने का श्रेय मगध को ही है। इसका पता नहीं चलता कि पाटलिपुत्र का वह कौन राजा था, जिसके पास अश्वघोष रहता था। कनिष्क जब उत्तर-भारत की विजय करता पाटलिपुत्र आया, तब यहाँ से वह उपहार-रूप में दो रत्न ले गया। एक रत्न था—भगवान् बुद्ध का कमण्डलु, जो अशोकाराम विहार में था और दूसरा था—अश्वघोष दार्शनिक जो पाटलिपुत्र के राजा के यहाँ था। अशोक के समय में जो स्थान मोग्गलिपुत्त तिष्य' का था, वही स्थान कनिष्क के समय में अश्वघोष का था। बौद्धधर्म के प्रचार में कनिष्क ने सम्राट् अशोक का अनुकरण किया और अश्वघोष ने मोग्गलिपुत्त तिष्य का स्थान ग्रहण किया। अश्वघोष की विद्वत्ता का प्रभाव कनिष्क के राजनीतिक तथा सांस्कृतिक जीवन पर छा-सा गया था।

मगध के अन्य बौद्ध विद्वानों की तरह अश्वघोष[1] ने भी ब्राह्मण-ग्रन्थों का अध्ययन किया और दर्शन तथा साहित्य में पारंगत होकर बौद्धधर्म में प्रवेश किया था। यद्यपि बौद्ध सम्प्रदाय में "पालि" भाषा का बहुत आदर था, तथापि अश्वघोष ने अपना बौद्ध साहित्य संस्कृत भाषा में लिखा। यह शुंगकालीन संस्कृत भाषा के उत्थान का ही प्रभाव था। यद्यपि अश्वघोष दर्शनशास्त्र का प्रगाढ़ विद्वान् था, तथापि उसने नाटक और काव्य ही मुख्यतः लिखे। सौन्दरनन्द, बुद्धचरित वज्रसूची, उपनिषद्, सारिपुत्तप्रकरण, जातकमाला, सूत्रालंकार, महायान श्रद्धोत्पाद और गण्डि-स्तोत्र उसके मुख्य ग्रन्थ हैं। 'सूत्रालंकार' का दूसरा नाम "कल्पनामंडतिका" भी है। इस ग्रन्थ का पता चीनी अनुवाद से चला था। चीन देश में इसका अनुवाद 405 ई० में हुआ था। इसी तरह "बुद्धचरित" का चीनी भाषा में अनुवाद पाँचवीं सदी में "धर्मरक्ष" ने किया था और तिब्बती अनुवाद आठवीं सदी में हुआ था। 'बुद्धचरित' की मूलतः संस्कृत में पाण्डु-

---

1. अश्वघोष पाटलिपुत्र में जन्मा था। वह विद्वान और सफल वक्ता था। इत्सिंग के अनुसार उसके भाषणों के मन्द्रघोष सुनकर अश्व (घोड़े) भी शांत हो जाते और इसीलिए उसका नाम अश्वघोष था।

लिपि नेपाल में मिली थी, जिसकी खण्डित प्रति को अमृतानन्द नामक विद्वान् ने 1830 ई० में चार सर्ग और कई श्लोक जोड़कर पूर्ण किया था। 'बुद्ध-चरित' का चीनी अनुवाद सारमात्र है, किन्तु तिब्बती अनुवाद पूर्णरूप में है, ऐसा डा० बेंजल का कथन है। नन्दर्गिकर[11] ने इसके पाँच सर्गों का एक प्रामाणिक संस्करण छपवाया है, जो पंजाब के 'बेतिया' नगर से उन्हें प्राप्त हुआ था।

फाहियान के यात्रा-विवरण से पता चलता है कि 399 ई० में उसने चांगान (शेंसे के सेगन जिला) से अपनी यात्रा का आरम्भ किया। विभिन्न जगहों से होते हुए वह रेगिस्तान पारकर ह्वोतशेन (लोपनोर) पहुँचा, फिर वहाँ से अनेक रास्तों को पारकर उद्यान आया, वहाँ से सिंधु नदी के आस-पास स्थान होते हुए पुरुषपुर और तक्षशिला आया, वहाँ से विभिन्न जगहों से होते हुए वह मथुरा आया। कान्यकुब्ज में गंगा नदी पारकर साकेत पहुँचा, वहाँ से श्रावस्ती, कपिलवस्तु, वैशाली होते हुए वह पाटलिपुत्र आया। पाटलिपुत्र से उसने राजगृह, गया और वाराणसी की यात्रा की। अपनी तीर्थयात्रा समाप्त कर उसने तीन साल तक पाटलिपुत्र में ही बिताये।

फाहियान बताता है कि पाटलिपुत्र के भवन तथा राजप्रासाद इतने भव्य एवं विशाल थे कि शिल्प की दृष्टि से उन्हें अतिमानवीय हाथों का बनाया हुआ समझा जाता था। यहाँ के निवासी अति धनाढ्य थे। नगर में निःशुल्क चिकित्सालय काम करते थे। विधवाओं, अपाहिजों, अनाथों आदि के लिए अनेक शरण-स्थल थे। पर्वो-उत्सवों के अवसर पर फाहियान पाटलिपुत्र की शोभा देखकर दंग रह गया था। नगर-मार्गों पर सारी-सारी रात दीपक और मशाल जलते रहते थे। दिन में विशाल शोभा-यात्राएँ निकलतीं जिनके साथ असंख्य गायक, वादक, नर्तक आदि होते थे। शोभा-यात्रा में आगे-आगे विशाल चतुश्चक्र रथ चला करते थे, जिनपर बांस से पँचमंजिले मंदिर बने होते थे।

फाहियान के समय तक बौद्ध धर्म का मुख्य शिक्षा-संस्थान पाटलिपुत्र में ही था। हीनयान और महायान की शिक्षा दो विहारों में होती थी। प्रत्येक विहार में लगभग 700 बौद्ध भिक्षु शिक्षा प्राप्त करते थे। यहाँ के विद्वानों की कीर्ति से आकृष्ट होकर देश के हर कोने से विद्यार्थियों के झुण्ड उनके पास अध्ययन करने आते थे।

पाटलिपुत्र के ये दो विहार कौन-से थे? निश्चित रूप से कहा

जायगा कि ये दो विहार 'अशोकाराम' और 'कुक्कुटाराम' ही थे, जो फाहियान के भारत आने के 650 वर्ष पूर्व स्थापित हुए थे। सम्राट् अशोक ने इनकी स्थापना की थी, जो मौर्य शासन काल तक तो अक्षुण्ण रहे ही, इसके बाद भी पुष्यमित्र शुंग के समय में भी हमने देखा है कि मिनान्दर के गुरु नागसेन की भी शिक्षा अशोकाराम विहार में ही हुई थी। उनके बाद कनिष्क के काल में ही हम अश्वघोष को भी इसी विहार में शिक्षा पाते देखते हैं। अत: मगध में नये-नये साम्राज्य तथा धर्म बने और बिगड़े पर शिक्षा-संस्थाओं पर जरा भी आँच नहीं आई। वे ही विहार इस गुप्तकाल में भी अवस्थित थे, जिनकी चर्चा फाहियान करता है। इस समय का अतिप्रसिद्ध बौद्ध विद्वान 'बुद्धघोष' धर्म-उद्योग के लिए लंका गया था। उसकी शिक्षा भी उन्हीं विहारों में हुई होगी, इसकी बहुत कुछ संभावना सही मानी जा सकती है।

किन्तु अब प्रश्न उठता है कि कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य ने अपनी राजधानी पाटलिपुत्र में, जहाँ पहले से बौद्धों ही की दो शिक्षण-संस्थाएँ थीं, विश्वविद्यालय का निर्माण न कराकर नालन्दा में क्यों कराया ? इसलिए नालन्दा की प्राचीनता और पवित्रता के सम्बन्ध में यहाँ हमें थोड़ा दृष्टिपात करना होगा।

चीनी यात्री फाहियान ने 410 ई० में पाटलिपुत्र की यात्रा की थी। उसने यहाँ एक अशोक स्तूप देखा था। उसके विवरण से साफ पता चलता है कि पाटलिपुत्र का महत्त्व मात्र एक धार्मिक एवं शैक्षणिक केन्द्र के रूप रह गया था।

ह्वेनत्सांग या युवान-च्वांग नामक विदेशी यात्री के विवरण से पाटलिपुत्र के मार्गों की जानकारी मिलती है। उन्होंने कुशीनरा से वाराणसी पहुँचकर बिहार की तरफ यात्रा की। वे बनारस से गंगा के साथ चान-चु प्रदेश जिसकी पहचान 'महाभारत' के 'कुमार विषय' में की जा सकती है, पहुँचे। वहाँ से वे वैशाली आए और नेपाल गए। नेपाल से लौटकर वे पुन: वैशाली आए और फिर पाटलिपुत्र आए। इस काल में एक रास्ता बाड़ी से अयोध्या होते हुए वाराणसी पहुँचता था और वहाँ दक्षिणी मार्ग से मिलकर उत्तर-पूर्व की तरफ पाटलिपुत्र आता था। पाटलिपुत्र से यह सड़क मुंगेर, चम्पारण, दुगमपुर होते हुए बंगसागर पहुँचती थी।

पाटलिपुत्र को ह्वेनत्सांग ने गंगा नदी के दक्षिण में देखा और उसका घेरा 70 "ली" बताया। उसने अशोकाराम को ही कुक्कुटाराम बताया है।

पाटलिपुत्र के गुप्त राजाओं का काल 275 ई० से आरंभ होकर लगभग छठी सदी के अन्त तक चलता रहता है। यह सवा तीन सौ वर्षों का लम्बा समय, बिहार-प्रदेश का ही नहीं, प्रत्युत् समस्त भारत का स्वर्णिम काल माना गया है। इस काल में गुप्त सम्राटों ने बौद्धधर्म के संरक्षण और विस्तार के लिए बड़े-बड़े उद्योग किये।

प्रथम गुप्त राजा "श्रीगुप्त" सन् 275 ई० में पाटलिपुत्र की गद्दी पर बैठा। इसके बाद घटोत्कच गुप्त, चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त और चंद्रगुप्त विक्रमादित्य (द्वितीय) क्रमशः मगध के राजसिंहासन पर आसीन हुए। द्वितीय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में ही (सन् 399 ई० से 412 ई० तक) चीनी यात्री "फाहियान" भारत आया था। उसने पाटलिपुत्र के सम्बन्ध में लिखा—"यद्यपि यहाँ का राजा परम भागवत था, तथापि धार्मिक मतभेद न होने के कारण किसी को उसके राज्य में क्लेश नहीं उठाना पड़ता।" इसी धर्म-सहिष्णुता के कारण परम भागवत गुप्त राजाओं के काल में बौद्ध धर्म की परम उन्नति हुई। जिस हीनयान सम्प्रदाय की भित्ति कनिष्क के काल में खोखली हो गई थी, उसकी नींव चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के काल में फिर से सुदृढ़ की गई और 'वसुबन्धु' ने सौत्रान्तिकवाद के ऊपर "अभिधर्मकोश" जैसा ग्रन्थ तैयार किया। धर्मबन्धु के भाई असंग ने भी 'विज्ञानवाद' या योगाचार-सम्प्रदाय पर कई ग्रन्थों की रचना की, जिसको मगध के राजा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का पूरा प्रोत्साहन प्राप्त था। इस काल में बौद्ध दर्शन में वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार और माध्यमिक—ये चारों सम्प्रदाय सर्वांगपूर्ण होकर स्थिर हुए। यही समय था, जब सर्वास्तिवादी, स्थविर-वादी और महासांघिक, तीनों सम्प्रदाय साथ-साथ विकसित हुए। सम्राट् अशोक के समय में जिस तरह बौद्धधर्म के प्रचार के लिए अनेक धर्म-महामात्य विभिन्न देशों और नगरों में भेजे गये थे, उसी तरह गुप्तकाल में भी लंका, बर्मा, चम्पा, सुमात्रा, चीन, तिब्बत आदि देशों में भी धर्म के प्रचारार्थ मगध के विद्वान भिक्षु फैले। ये राजा यद्यपि परम भागवत थे, तथापि बौद्धधर्म के विकास का जो मूल स्रोत था, वह इन उदार राजाओं के मानस-सर के अन्तराल से ही प्रवाहित था। इसके अतिरिक्त इनके कुछ ऐसे जीवन्त-ज्वलन्त कार्य थे, जहाँ से धर्म का उत्स निःसृत होता है। इन सभी विषयों का दिग्दर्शन कराना यहाँ आवश्यक है।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (द्वितीय) के बाद उसका पुत्र 'कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य' पाटलिपुत्र के राजसिंहासन पर बैठा। यह काल सन् 413 ई० का है। इस समय तक चीनी यात्री फाहियान अपने देश चीन जाने के लिए भारत छोड़ चुका था। कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य ने बौद्धधर्म के विकास तथा स्थायित्व के लिए एक ऐसा काम किया, जिसे सम्राट् अशोक ने भी नहीं किया था। यह काम था—नालन्दा में बौद्धधर्म की शिक्षा के लिए एक विश्वविद्यालय की स्थापना। यद्यपि नालन्दा स्थान बहुत पहले से अर्थात् बुद्ध के समय से ही बौद्धधर्म का केन्द्र रहा था और समय-समय पर उसके केन्द्र का विकास भी हुआ था, तथापि संसार-प्रसिद्ध विश्वविद्यालय की स्थापना इसी गुप्त राजा कुमारगुप्त के समय में ही हुई, जिसका विकास गुप्तवंश के सम्राट् करते ही गये।

कुमारगुप्त का 43 वर्षों का राज्यकाल परम सुख-शान्ति का तथा धार्मिक एवं सांस्कृतिक उत्थान का काल रहा है। इसके पूर्वजों के बलाढ्य प्रभुत्व के कारण आस-पास के सभी शत्रु क्षीणवीर्य और हतप्रभ होकर इसकी प्रभुता स्वीकार कर चुके थे और इसकी उदारता एवं स्नेह वत्सलता के कारण प्रजा परम संतुष्ट होकर सुखमय जीवन बिता रही थी। इसीलिए हम देखते हैं कि अपने सम्पूर्ण शासन-काल में कुमारगुप्त का चक्रवर्त्तित्व बिलकुल अक्षुण्ण बना रहा। साथ ही इसके सिक्कों में 'अजित महेन्द्र', 'महेन्द्रादित्य' और 'परमराजाधिराज का भी उल्लेख मिलता है। इस तरह कुमारगुप्त ने कला तथा धार्मिक उत्थान के द्वारा अपने शान्तिमय काल का परम सदुपयोग किया। ऐसे ही सदुपयोग के परिणाम-स्वरूप नालन्दा विश्वविद्यालय की स्थापना हुई।

मगध में नये-नये साम्राज्य तथा धर्म बने और बिगड़े पर शिक्षा-संस्थाओं पर जरा भी आँच नहीं आई। वे ही विहार इस गुप्तकाल में भी अवस्थित थे जिनकी चर्चा फाहियान करता है। इस समय का अति-प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान 'बुद्धघोष' धर्म-उद्योग के लिए लंका गया था। उसकी शिक्षा भी उन्हीं विहारों में हुई होगी, इसकी बहुत कुछ संभावना सही मानी जा सकती है।

किन्तु अब प्रश्न उठता है कि कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य ने अपनी राजधानी पाटलिपुत्र में, जहाँ पहले से ही बौद्धों की दो शिक्षण-संस्थाएँ थीं, विश्वविद्यालय का निर्माण न कराकर नालन्दा में क्यों कराया? इसीलिए

नालन्दा की प्राचीनता पवित्रता के सम्बन्ध में यहाँ हमें थोड़ा दृष्टिपात करना होगा :

ह्वेनसांग का जन्म 600 ई० में चीन देश के "काउसो" प्रांत के 'चिनल्' नामक ग्राम में हुआ था। बौद्धधर्म की शिक्षा प्राप्त करने के लिए, उसने अपने देश से, उनतीस वर्ष की आयु में भारत के लिए प्रस्थान किया। भगवान बुद्ध ने अपनी उनतीस वर्ष की आयु में ही संन्यास ग्रहण कर गृह का त्याग किया था। जान पड़ता है, ह्वेनसांग उन्हीं जैसा भारत आया था और उन्हीं के दरबार से अपने देश के लिए ससम्मान विदा हुआ था। भारत में आने पर हर्षवर्द्धन से मिलने के लिए जब वह "थानेश्वर" गया, तब सम्राट् यात्रा पर गया हुआ था और वह पूर्वी देश में था। ह्वेनसांग वहाँ से चलकर मथुरा और श्रावस्ती होते हुए बिहार-प्रदेश में आया। बिहार में वह सर्वप्रथम महासाल अखाढ़, शाहाबाद आया। वहाँ से आरा नगर चैत्य देखते हुए उसने गंगा को पार किया और आटवा, वैशाली एव श्वेतपुर होते हुए वह पुनः गंगा पार कर पाटलिपुत्र पहुँचा। इसके बाद बोधगया आदि स्थानों का भ्रमण करके वह नालन्दा गया। वहीं "शीलभद्र" प्राचार्य से उसकी भेंट हुई। किन्तु थोड़े दिनों बाद ही वह भारत-भ्रमण के लिए नालन्दा से भी चल पड़ा। समस्त भारत के प्राचीन नगरों और बौद्ध तीर्थों का भ्रमण कर जब वह दुबारा नालन्दा आया, तब पाटलिपुत्र में मालवा के राजा माधवसेन के पुत्र माधवगुप्त का शासन था, जिसे हर्षवर्द्धन ने बैठाया था। वह माधवसेन पाटलिपुत्र के गुप्त राजाओं का ही वंशज था, जो मालवा का शासन-भार वहन करता था और जो गुप्तों के अन्त होते हुए प्रतापादित्य की तेजोहीन धूमिल प्रभा का प्रतीक मात्र था। नालन्दा में ह्वेनसांग ने जब शिक्षा प्राप्त करने की जिज्ञासा प्रकट की, तब प्राचार्य शीलभद्र ने उसे पहले पहल योग-दर्शन और न्याय-दर्शन पढ़ने के लिए एक क्षत्रिय विद्वान के पास भेज दिया। चीनी यात्री फाहियान बौद्ध धर्म के अध्ययन के लिए भारत आया था और उसने पाटलिपुत्र के अशोकाराम विहार में बौद्ध ग्रन्थों को पढ़ा था।

गुणवर्मन् जब चीन पहुँचा, तब उसे वहाँ 'कुमारजीव' के सहयोगी विद्वान भी मिले। इसके बाद भारत से जो लोग धर्म-प्रचार के लिए चीन गये, उनके नाम इस प्रकार हैं—पुण्यत्रात, बुद्धयश, संघदेवगीतम् धर्मयश (धर्मक्षेत्र या धर्मरक्ष) गुणभद्र आदि। ये सभी मुख्य धर्माचार्य थे। इनमें द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ भिक्षु मगध के ही निवासी थे तथा पाटलिपुत्र

के अशोकाराम विहार में इनकी शिक्षादीक्षा हुई थी। इन विद्वानों ने चीन में जाकर बौद्धधर्म को स्थायी रूप दिया। उस समय इनका वहाँ राजोचित स्वागत हुआ था तथा आज तक उनके प्रति चीनी जनता में आदर-भाव वर्त्तमान है। ये सभी यहाँ धर्माचार्य माने गये हैं।

बिहारप्रदेश में गुप्तों का शासन-काल गिरता-पड़ता लड़खड़ाता किसी-न-किसी रूप में आठवीं सदी के मध्य तक चलता रहा—अर्थात् सम्राट् हर्षवर्द्धन के समय में और उसके बाद भी। इसपर थोड़ा प्रकाश पहले डाला जा चुका है। किन्तु हर्षवर्द्धन के समय समस्त बिहार-बंगाल में अराजकता फैल गई थी। इतिहासकारों का कहना है कि जनता की अवस्था मत्स्य-न्याय की-सी हो गई थी—जैसे बड़ी मछली छोटी और निर्बल मछली को निगल जाती है, उसी तरह समाज का बली पुरुष अपने प्रभुत्व से निर्बल को पीस देता था। "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली कहावत चरितार्थ हो रही थी। परिस्थिति से ऊबकर प्रजा ने अपनी रक्षा के लिए अपना एक राजा चुना और उसके माथे पर राज्य का मुकुट अपने हाथों से पहनाया। उस व्यक्ति का नाम 'गोपाल' था।

गौड़-देश में दयितविष्णु नाम का एक विद्वान् पुरुष था। इसके लड़के का नाम वाप्यट था। वाप्यट अपने पिता की तरह ही अनेक शास्त्रों में निष्णात था। पर समाज में घोर अव्यवस्था देखकर इसने शास्त्र को कुछ दिनों के लिए त्याग दिया और उसकी जगह शस्त्र धारण कर लिया। वाप्यट ने शास्त्र की तरह ही शस्त्र-विद्या में भी पूरी निपुणता दिखलाई और समाज में अव्यवस्था फैलानेवाले बहुत-से आततायियों को ठिकाने लगा दिया और बहुतों को रास्ते पर ले आया। इसी वाप्यट का पुत्र गोपाल था, जो अपने पिता की तरह ही महावीर और धीर था। इसलिए प्रजा ने वाप्यट जैसे न्यायी व्यक्ति के पुत्र को राजा का मुकुट दिया। इसी गोपाल ने प्रजा की सहायता से समस्त बिहार और बंगाल को एक सूत्र में पिरोया और शासन को सुव्यवस्थित कर प्रजा को चैन की नींद सुलाया। इसने शासन की सुव्यवस्था के लिए राज्य के केन्द्र-भाग में अपनी राजधानी बनायी। यह राजधानी पटना जिले के उदण्डपुर (आधुनिक बिहारशरीफ) नगर में कायम हुई थी। इसने अपनी राजधानी के पास नालन्दा में एक बौद्ध विहार का भी निर्माण करवाया था। यह स्वयं बौद्धधर्म का उपासक था। इसके उत्तराधिकारी भी बौद्धधर्म के प्रति पूर्ण

उदार बने रहे। वे सभी बौद्धधर्म के संरक्षण और परिवर्द्धन में निरन्तर दत्तचित्त रहे।

गोपाल का पुत्र धर्मपाल 769 ई० में राजसिंहासन पर आरूढ़ हुआ। उसने चालीस वर्षों तक राज किया। उसके काल में बंगाल के इस पालवंश ने पाटलिपुत्र को ही अपना केन्द्र बना लिया था; अतः फिर एक बार बिहार-प्रदेश के इस राजा की तलवार के समक्ष समस्त उत्तर भारत ने अपना मस्तक झुका दिया। यद्यपि अपने शासन-काल की लगभग 300 वर्षों की अवधि में पाल-वंश सर्वदा राजनीतिक कोलाहल एवं युद्ध के मैदान में व्यस्त रहा, तथापि इसने बौद्ध धर्म के विकास और संरक्षण के लिए जो कार्य किया, वह चिरस्मरणीय है।

गुप्तकालीन गणितज्ञ—आर्यभट्ट

आर्यभट्ट उसके परिवार और माता-पिता के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है। कहा जाता है कि आर्यभट्ट कुसुमपुर (पटना, बिहार) का रहनेवाला था। अपने जन्मकाल के बारे में उसने स्वयं अपने ग्रन्थ में लिखा है' "जब वह 23 वर्ष का था, उस समय 60 वर्षों के 60 युग और तीन युगपद (सतयुग, त्रेता और द्वापर) बीत चुके थे।" इसके अनुसार उसका जन्म 476 ई० के आसपास हुआ था। उसकी कृति में दिये बहुत-से खगोलीय तथ्यों के आधार पर कतिपय विद्वानों द्वारा की गई गणनाओं से भी यही संकेत मिलता है कि आर्यभट्ट संयततम मान्यताओं के हिसाब से अधिक पांचवीं शताब्दी ई० में रहे होंगे।

अपने इस ग्रंथ में आर्यभट्ट ने नवीन प्रेक्षण प्रस्तुत किये तथा कुछ पुराने प्रेक्षणों का खंडन किया। उस समय रूढ़िवादी विचारों के विपरीत आर्यभट्ट ने कहा कि पृथ्वी गोल है तथा अपनी धुरी पर घूमती है। उन्होंने चन्द्र और सूर्य ग्रहण के कारणों के सही सिद्धांत का प्रतिपादन किया। उन्होंने बताया कि ग्रहण राहु के कारण नहीं अपितु पृथ्वी और चन्द्रमा की छाया के कारण होते हैं।

आर्यभट्ट ने बीजगणित की नींव भी रखी और ज्यामिति में बहुत से प्रेक्षण किये। संभवतया उन्होंने ही सर्वप्रथम कुट्टकार अथवा सम्पेपक की धारणा का भी प्रतिपादन किया, जिसका भारत में अन्य व्यक्तियों ने आगे चलकर विकास किया।

आर्यभट्ट ने बड़ी संख्याओं को अक्षरों द्वारा व्यक्त किया। आर्यभट्ट इस प्रकार का अंकन इस कारण कर सके, क्योंकि प्राचीन भारतीय स्वर वैज्ञानिकों ने एक ऐसी स्वाभाविक वर्णमाला तैयार की थी जिसमें 15 स्वर थे, 25 स्पर्शवर्ण व्यंजन (क से म तक) तथा आठ अन्य अक्षर थे (य से ह तक)। आर्यभट्ट ने स्पर्श-वर्ण व्यंजनों को स्वर 'अ' से पहले रखकर 1 से 25 तक की संख्याओं के अंकन के लिये प्रयुक्त किया और जब इन अक्षरों को अन्य स्वरों से पहले रखा जाता था तो वह इन संख्याओं की उच्च दाशमिक शक्तियों का (10 16 तक) अंकन करते थे। य से ह तक के अक्षरों को 30 से 100 तक की संख्याओं को प्रकट करने के लिए प्रयोग किया गया। इस प्रकार 'ग' 3 के लिये, 'गि' 300 के लिए तथा 'गु' 30,000 को प्रकट करता था। उनके वर्णमाला-अंकन का एक अन्य उदाहरण है— उन्होंने एक महायुग में चन्द्रमा की परिक्रमाओं की संख्या को 'क थ गि दि नु सु च लृ' शब्द से व्यक्त किया। दायें से बायें को एक-एक अक्षर क्रमशः 6, 30, 300, 3000, 50,000, 700,000 700,00,00, 50,000,000, संख्याओं को प्रकट करता है—अर्थात् संख्या 577533316 हुई। यह विश्वास करना कठिन है कि इस प्रकार का विवरणात्मक वर्णमाला अंकन स्थान-मूल्य अंकन पद्धति पर आधारित नहीं था।

किन्तु ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है जिससे यह सिद्ध होता हो कि इन अक्षरों द्वारा वास्तविक गणना की जाती थी। सम्भावना यह है कि आर्यभट्ट गणना में प्रयुक्त करने के लिए किसी संख्यात्मक-अंकन की पद्धति का आविष्कार नहीं कर रहे थे अपितु उन्होंने पद्य में बड़ी और भारी-भरकम संख्याओं को अति संक्षिप्त रूप में व्यक्त करने की एक पद्धति की युक्ति निकाली। वर्णमाला द्वारा अंकन की इस पद्धति का उन्होंने केवल दशगीतिक में ही प्रयोग किया। ग्रंथ के अन्य भागों में छोटे आकार की ही कुछ संख्याएं हैं, अतः उन्हें व्यक्त करने के लिए आर्यभट्ट ने संख्याओं को प्रकट करने वाले साधारण शब्दों का ही प्रयोग किया है।

महान यूनानी बीजगणितज्ञ, डायोफेंटस, (जिन्हें 360 ई० के लगभग सम्राट् जुलियन के समय में हुआ समझा जाता है) के आर्यभट्ट के बीजगणित के ज्ञान की तुलना से यह प्रकट होता है कि आर्यभट्ट को कई अज्ञात पदों वाले समीकरण को हल करने का ज्ञान था जबकि डायोफेंटस इससे अनभिज्ञ था।

कालान्तर में परवर्ती लेखकों ने आर्यभट्ट को उद्धृत तो किया है

किन्तु उनका मूलग्रन्थ उपलब्ध नहीं था तथा इसे लुप्त समझा गया। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में अलबिरुनी ने लिखा है कि, "उन्हें आर्यभट्ट की पुस्तक का कोई भी अंश प्राप्त नहीं हो पाया और उन्हें आर्यभट्ट के बारे में जो भी जानकारी मिली वह ब्रह्मगुप्त द्वारा दिए गये उनके ग्रंथ के उदाहरणों से ही प्राप्त हुई।"

किन्तु 1874 ई० में लीडेन में कैर्न ने 'आर्यभट्टीय' को प्रकाशित किया। इसमें गणित और खगोल से सम्बन्धित आर्यभट्ट के सिद्धांतों का समावेश था। यही ग्रंथ प्राचीन भारत के महान वैज्ञानिकों में से एक आर्यभट्ट के बारे में हमारे ज्ञान का आधार प्रस्तुत करता है।

पातंजलि

योग विद्या के प्रणेता पातंजलि **कुषाण** काल में पाटलिपुत्र के निवासी थे। मस्तिष्क की स्वतः परिवर्तित क्रियाओं को पूर्णतः स्थिर बनाने के लिये बाह्य संवेदी प्रभाव का नियंत्रित करने के सिलसिले में किये गए प्रयास को उन्होंने **योग** बताया। इसके लिए आत्मनियंत्रण और नियमानुकूल आचरण का पालन करना आवश्यक बताया गया। **हठयोग** और **प्राणा-याम** की जानकारी पातंजलि ने दी। इन दोनों योग प्रक्रियाओं को उन्होंने मजबूत फेफड़े के लिए आवश्यक बताया। योगाभ्यास द्वारा शरीर की भौतिक एवं मानसिक प्रक्रियाओं पर नियंत्रण एक ऐसा विचार और शिल्प-विधि है जिसे प्राचीन भारत ने पूर्ण किया तथा विश्व के समक्ष रखा। इसमें तथाकथित उन अलौकिक घटनाओं में से कुछ को समझने की भी सम्भावनाएं हैं जिनपर विश्व स्तर पर अध्ययन किया जा रहा है।[1]

पाटलिपुत्र का पतन

पुरातात्त्विक सामग्रियों के अभाव की बात हम छठी शताब्दी के अन्तिम चरण से पाने लगते हैं। 637 ई० में चीनी यात्री व्हेनत्सांग ने पाटलि-पुत्र को एक बड़ा गांव बताया है। कस्बा या गांव के रूप में पाटलिपुत्र का अस्तित्व 16 वीं शताब्दी तक बना रहा। इसी शताब्दी में शेरशाह ने

---

1. ओ० पी० जग्गी, **प्राचीन भारत के वैज्ञानिक एवं उनकी उपलब्धियाँ** दिल्ली, 1980, पृ० 45-49
2. ओम् प्रकाश प्रसाद " गिलम्सेज ऑफ टाउन-प्लानिंग इन पाटलिपुत्र (सी 400 बी० सी०ए०डी० 600) 'पटना थ्रू द एजेज' (सं०) कयामुद्दीन अहमद, 1988, पृ० 41-52

पाटलिपुत्र को अपना प्रशासनिक केन्द्र बनाया और पाटलिपुत्र एक प्रमुख शहर हो गया। सातवीं शताब्दी से 16 वीं शताब्दी के बीच पाटलिपुत्र की चर्चा कहीं-कहीं देखने को मिलती है।[2]

सातवीं शताब्दी में इस नगर के पतन का मुख्य कारण उन सारे तत्वों का अभाव माना जा सकता है जिनके उपस्थिति के कारण मुख्य रूप से मौर्य काल में यह नगर विश्व-प्रसिद्ध रहा। संभवतः इस नगर का सारा इलाका एक निश्चित शताब्दी में बर्बाद नहीं हुआ बल्कि इस नगर का कुछ हिस्सा लगभग 300 ई०, 400 ई० कुछ हिस्सा 500 ई० और कुछ हिस्से 600 ई० के आसपास बर्बाद हुए। संभवतः नदियों के मार्गों में बदलाव होने के कारण इस नगर का पूर्व गौरव समाप्त होने लगा था। गुप्त शासकों की राजधानी इलाहाबाद के आसपास होने से पाटलिपुत्र का महत्व कम होने लगा था। बंगाल के पाल शासकों ने इस नगर को विकसित करने की आवश्यकता नहीं महसूस की। पाटलिपुत्र के आस-पास के जंगलों के कटने और नदियों के सूखने का बुरा असर इस नगर पर पड़ना असंभव नहीं जान पड़ता। राजनीतिक दृष्टिकोण से उत्तर भारत में विशाल साम्राज्य स्थापित करने की योग्यता का तत्कालीन शासकों में अभाव रहा। परिणाम स्वरूप इन छोटे-छोटे राज्यों का उदय और सामंतवादी वातावरण पाते हैं। इस स्थिति में पाटलिपुत्र में किसी महत्वपूर्ण राजा और राज्य के अभाव में इस नगर का विकसित होने का प्रश्न नहीं उठता। विदेशी व्यापार का पतन, आर्थिक कठिनाई, स्थानीय कारण तथा वातावरण, आपसी युद्ध जैसे तत्वों ने पाटलिपुत्र का पूर्व गौरव छीन लिया।

युगपुराण से प्रत्यक्ष और अर्थशास्त्र से अप्रत्यक्ष रूप से सूखा पड़ने की बात हम पाते हैं। आग लगने, भूकंप आने, महामारी फैलने, बाढ़ आने आदि की चर्चा कुषाण काल के बाद के साहित्यिक स्रोतों में प्रमुखता के साथ पाते हैं। इस स्थिति में गुप्त शासकों द्वारा पाटलिपुत्र को छोड़कर पश्चिम की ओर जाना स्वभाविक लगता है।[1]

---

1. आर०एन० नन्दी, "पाटलिपुत्र इन हिस्ट्री एन्ड लिजेण्ड, वही पृ० 1-14.
2. आर० एन० नन्दी, वही; विजय कुमार ठाकुर, "पाटलिपुत्र: ए स्टडी इन इट्स टाउन-प्लानिंग एण्ड डिक्लाइन" वही पृ० 23-36

सम्भवतः चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ने जो भागवत धर्म का महान पोषक था, अपने साम्राज्य की राजधानी अयोध्या में बनाई।

चीनी यात्री फाहियान ने, जो इस समय पाटलिपुत्र आया था, इस नगर के ऐश्वर्य का वर्णन करते हुए लिखा है कि "यहाँ के भवन तथा राज-प्रासाद इतने भव्य एवं विशाल थे कि शिल्प की दृष्टि से उन्हें अतिमानवीय हाथों का बनाया हुआ समझा जाता था।" इस समय के (गुप्तकालीन) पाटलिपुत्र की शोभा का वर्णन संस्कृत कवि वररुचि ने इस प्रकार किया है — "[illegible]: प्रकृष्टवदनैः [illegible]पृतैः, श्री मद्रत्नविभूषण-विरचितैः [illegible]ज्ज्वलैः, क्रीडासौख्यपरायणं विरचितप्रख्यात[illegible] गुणभूः पाटलिपुत्रचारुतिलका स्वर्गायते सांप्रतम्।" पश्चाद्वर्ती गुप्तकाल में पाटलिपुत्र का महत्व गुप्त साम्राज्य की अवनति के साथ-साथ कम होता चला गया। तत्कालीन मुद्राओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि गुप्त साम्राज्य के ताम्र-सिक्कों की टकसाल समुद्रगुप्त और चंद्रगुप्त द्वितीय के समय में ही अयोध्या में स्थापित हो गई थी। छठी शती ई० में हूणों के आक्रमण के कारण पाटलिपुत्र की समृद्धि को बहुत धक्का पहुँचा था और उसका रहा-सहा गौरव भी जाता रहा था। भारत की यात्रा करनेवाले चीनी पर्यटक ह्वेनत्सांग ने 633 ई० में पाटलिपुत्र में सैकड़ों खंडहर देखे थे और गंगा के पास दीवारों से घिरे हुए इस नगर में उसने केवल एक सहस्र मनुष्यों की आबादी ही पाई थी। उसने लिखा है कि "पुरानी बस्ती को छोड़कर एक नई बस्ती बसाई गई है।" 1953 में हुई खुदाई से पता चलता है कि मौर्य प्रासाद अग्निकांड से नष्ट हुआ। शेरशाह के काल में बना शहरपनाह के ध्वंस पटना में मिले हैं।[1]

---

1. डॉ० [illegible] प्रसाद, "पटना अतीत के पन्नों पर," प्रगतिशील समाज (सं०) पटना, मार्च, 1957, पृ० 1-52

अध्याय—4

अजीमाबाद की पृष्ठभूमि

हर्ष आगे चलकर प्रतापी सम्राट् हर्षवर्द्धन ने पाटलिपुत्र में अपनी राजधानी न बनाकर कान्यकुब्ज (कन्नौज) को यह गौरव प्रदान किया। 811 ई० के लगभग बंगाल के पाल-नरेश धर्मपाल द्वितीय ने कुछ समय के लिए पाटलिपुत्र में अपनी राजधानी बनाई। कन्नौज के गहड़वालवंश के शासक विजयचन्द्र के 1169 ई० के ताराचंडी के लेख तथा उसके पुत्र जयचन्द्र के वाराणसी-अभिलेख (1176 ई०), दोनों से ही पता चलता है कि पाटलिपुत्र पर उस समय गहड़वालों का शासन था। इसके पश्चात सैकड़ों वर्षों तक यह प्राचीन प्रसिद्ध नगर विस्मृति के गर्त में पड़ा रहा। 1541 ई० में शेरशाह ने पाटलिपुत्र को पुनः एक बार बसाया क्योंकि बिहार का निवासी होने के कारण वह इस नगर की स्थिति के महत्व को भली भाँति समझता था। अब यह नगर पटना कहलाने लगा और धीरे-धीरे बिहार का सबसे बड़ा नगर बन गया। शेरशाह से पहले बिहार प्रान्त की राजधानी 'बिहार' नामक स्थान में थी, जो पालराजाओं के समय में उद्दंडयापुर, उदन्तिपुर नाम से प्रसिद्ध था। शेरशाह के पश्चात् मुगलकाल में पटना ही में बिहार प्रांत की राजधानी स्थायी रूप से रही। ब्रिटिश काल में 1912 ई० में पटना को बिहार-उड़ीसा के संयुक्त सूबे की राजधानी बनाया गया।

सत्रहवीं सदी में अब्दुल्ला द्वारा रचित **तारीख-ए-दाऊदी** (इलियट एवं डाउसन, **भारत का इतिहास**, चतुर्थ खण्ड, अनुवादक—मथुरालाल शर्मा, आगरा, 1979 ई०, पृ० 351) के अध्ययन से पता चलता है कि जब सिकन्दर लोदी के हाथ में बिहार का प्रांत आ गया तो वहाँ अपना अधिकारी नियुक्त करके वह मुनीर के शेख शर्फुद्दीन याहिया की कब्र की यात्रा करने गया। वहाँ उसने फकीरों और अन्य निवासियों को खूब प्रसन्न किया और फिर पटना लौट आया। इस तथ्य से दो बातों की जानकारी मिलती है। प्रथम तो यह कि सिकन्दर लोदी के समय पटना का महत्व था और दूसरा यह कि इसका नाम पाटलिपुत्र नहीं बल्कि पटना हो गया था।

अजीमाबाद

हिन्दुस्तान में सूबा बिहार बहुत पुरानी और पवित्र जगह है। यहाँ के पुराने स्मारक, भवन, खण्डहर, गिरे-गिराये पत्थर और इनपर खुदे अभिलेख, पुराने मंदिर, मस्जिदें, खानकाहें और मकबरे जबाने हाल से कह रहे हैं कि हम खुद वकयाते गुजस्ता (बीती हुई घटनाएं) के दफ्तर हैं बशर्ते कि कोई पढ़ने वाला हो मगर अफसोस है कि बहुत कमलोग ऐसी आँखें और जुबानें रखते कि उन बेजुबानों की दिली बातें समझ लें और जिस तरह वो चाहते हैं उसी तरह उनके वाकयाते गुजस्ता लिख डालें।[1]

इलाहाबाद और बंगाल के बीच का क्षेत्र 'बिहार सूबा' कहलाया। मुस्लिम काल में इस सूबे का एक नाजीम या सूबेदार होता जिसका ऑफिस अजीमाबाद था। बिहार में बने शीशा के बर्तन एवं अन्य वस्तुएँ तथा हाथ के बने कागज काफी मशहूर थे लेकिन यूरोपीय वस्तुओं के सामने बिहार की बनी ये वस्तुएँ सूर्य के समक्ष दीपक के समान हो गईं।[2]

राजधानी अजीमाबाद आठ मील लम्बी और एक मील से कम चौड़ी थी जहाँ एक लाख लोग रहते थे। इनमें हिन्दुओं की संख्या 75,000 और मुसलमानों की 20 000 थी।[3]

पटना हिन्दुओं में इसलिए पवित्र है कि पटनदेवी जी का यहाँ दर्शन है। दूसरे गंगाजी भी मौजूद हैं। सिक्ख लोग इसे उत्तम बताते क्योंकि गुरु गोविन्द सिंह जी (दसवें गुरु) का जन्म हुआ और वहीं पर हरमंदिर बना। शेरशाह की मस्जिद, शैफ खां का मदरसा, ख्वाजा अम्बर की मस्जिद, चनरू इंडिया का इमामबाड़ा, मीजर कटरा का इमामबाड़ा, जामा (बड़ी जगह) मस्जिद शाह अरजान का तकिया (कब्र), शाह बाकर का तकिया, कच्ची दरगाह, शाह मारूफ, शाह मंसूर की कब्र, शाह पीर दमड़िया का मजार मशहूर और पुरानी जगहें हैं। पादरी की हवेली, वलन्देज (हालैंड) का पुश्ता, चौहट्टा में पटना कॉलेज अच्छी और

---

1. खान बहादुर सैयद अली मुहम्मद शाद, तारीख सूबा बिहार (उर्दू), पटना, अजीमाबाद, 1893 पृ० 2
2. वही, पृ० 5
3. वही, पृ० 9

पुरानी इमारतें हैं। गिरजाघर (अंग्रेजी कब्रस्तान) मशहूर जगह है। शेख मट्ठा की गुरहटिया (गुरहट्टा) मशहूरे जमाना था। कहते हैं, मुस्लिम आक्रमण के समय यहाँ एक मील लम्बा तालाब था जिसमें नावें चलती थीं। उसके बगल में हिन्दुओं के बड़े-बड़े मकान थे। जीत के बाद मुसलमानों ने उसे ढाह दिया। समय बीतने के साथ-साथ उसे गुरहट्टा की सूरत बना ली। सम्भव है कि किसी व्यक्ति का नाम मट्ठा हो। उसने अपना अधिकार गुरहट्टा पर कर लिया हो और उसी के नाम पर उसका नाम गुरहट्टा पड़ा। नगरपालिका ने 1875 ई० में उसे खोदकर तालाब बनाया और बाग-बगीचा लगा दिया। चूंकि जिला के कलक्टर मिस्टर मैंगलस उस समय चेयरमैन थे, वह तालाब उन्हीं के नाम पर मैंगलस तालाब या मंगल तालाब कहलाया।[1]

गंगा के किनारे पाटलिपुत्र के आसपास 1541 ई० में शेरशाह द्वारा पाँच लाख की लागत से एक किला या दुर्ग बनवाया गया। इस शहर का विकास उस समय से होते गया। सोलहवीं शताब्दी में यह शहर काफी लम्बा और थोड़ा चौड़ा था।[1] पटना का इलाका पठान राजवंश के अधीन था। ये पठान करनानी कहलाते। इस राजवंश का अंतिम शासक दाउद खाँ करनानी ने अपने पिता सुलेमान खाँ करनानी की नीति का पालन नहीं करते हुए जमनिया के पूर्वी मुगलों पर आक्रमण कर दिया। परिणामस्वरूप मुगलों का व्यापक रूप से उसके राज्य पर आक्रमण हुआ। मुगल सेना पटना को अधिकृत नहीं कर सकी क्योंकि अफगानों को हाजीपुर से सैनिक सहायता मिलती रही। गंगा पार होने के कारण हाजीपुर पर तुरंत आक्रमण करना मुगलों के लिए मुश्किल था। अकबर के काल में हाजीपुर दुर्ग पर मुगलों का अधिकार हो गया। इस स्थिति में पटना पर अधिकार करना आसान हो गया। दाउद खाँ करनानी ने भागकर राजमहल नामक स्थान में शरण प्राप्त की। 1574 में अकबर ने पटना पर पुन: आक्रमण किया और अपने साम्राज्य का अंग बना लिया। 1580 में अपने साम्राज्य को अकबर ने जब 12 सूबों में बाँटा तो उनमें से एक बिहार सूबा भी था। **अकबरनामा** और **आईने अकबरी** के अध्ययन से पता चलता है कि पटना का विस्तार रोहतास से तेलियागढ़ी और उत्तर-दक्षिण में पहाड़ियों से घिरा था। प्रत्येक सूबा के लिए जो व्यवस्था

---

1 वही पृ० 5—9

थी उसी के अनुसार पटना में एक टकसाल स्थापित हुआ जहाँ 1580 के आसपास सिक्के बनाये जाते और सारे बिहार में प्रचलित थे।[2]

बाद के दो शताब्दियों में राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से पटना का विकास तेजगति से हुआ। शाही राजकुमारों और बादशाहों के नजदीकी रिश्तेदारों के साथ-साथ अनेक प्रमुख सूबेदारों (राज्यपालों) का मुख्यालय पटना हो गया। लोकनिर्माण कार्यों के अलावे अनेक भवनों का निर्माण सूबेदारों द्वारा किये गए। मिर्जा मुराद खां ने 1585 में एक **हम्माम** (स्नानागार) का निर्माण कराया जिसमें पानी से भरे अनेक कमरे थे। जहाँगीर कुली खां ने 1617 से 1619 के बीच अनेक मार्गों को चौड़ा किया। 1628 से 1632 के बीच सैफ खाँ ने एक प्रसिद्ध **मदरसा** (महाविद्यालय) और **ईदगाह** जहाँ आज भी ईद का सामूहिक नमाज पढ़ा जाता, का निर्माण किया। 1639 से 1643 के बीच शाइस्ता खां द्वारा निर्मित मस्जिदों की मरम्मत करायी गई। पटना सिटी में स्थित ... मुहल्ला तत्कालीन पटना की पूर्वी सीमा था। **दारुल अदल** (न्याय ...) भवन और **दारुल जब** (टकसाल) भवन बनाये गए। राज्यपालों एवं उनके अनेक ... अधिकारियों के लिए बड़े एवं सामान्य भवनों का निर्माण हुआ। ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा यहाँ कोठियाँ या गोदाम ... गए ... कारण भवन निर्माण शैली में नवीनता आयी।

इस शहर की भौगोलिक बनावट विचित्र थी। गंगा के दक्षिणी किनारे स्थित इस नगर के उत्तरी छोर पर गंगा के समानांतर पुनपुन नदी बहती थी। इन दोनों नदियों के मध्य एक पतली-सी समतल भूमि थी। अतः इस शहर की चौड़ाई नहीं बल्कि सिर्फ लम्बाई बढ़ सकी। अन्य मध्यकालीन नगरों के समान पटना दीवारों से घिरा था जिसमें कई छोटे-बड़े दरवाजे लगे थे। ... में से कुछ मुहल्लों का नाम जैसे ...मानीपुर

---

1. जे. एन. सरकार, ग्लिम्पसेस ऑफ मेडिएवल बिहार कलकत्ता, 1963 पृ० 6-7

2. अजीमाबाद से सम्बन्धित सारी जानकारियों के लिए लेखक प्रसिद्ध इतिहासकार प्रोफेसर कयामुद्दीन अहमद, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय का अनुगृहीत है। इस पर उनका लेख देखें, "पटना-अजीमाबाद (1540-1765) ए स्केच" पटना थ्रू द एजेज (सं०) कयामुद्दीन अहमद, पटना, 1988, पृ० 53-70।

की खड़की" आज भी है। इन प्राचीन दीवारों की तत्कालीन गवर्नरों द्वारा मरम्मत एवं कुछ बदलाव का सिलसिला 17 वीं से 19 वीं शताब्दी तक चलता रहा। पश्चिमी एवं पूर्वी दरवाजा आज भी देखा जा सकता जो पूर्वी और पश्चिमी दरवाजा के नाम से जाना जाता है।

मैनरिक के अनुसार 1641 ई० में पटना की आबादी 2000,00 थी। 18 वीं शताब्दी के बाद पटना दुर्ग के बाहर लोग बसने लगे। 17 वीं शताब्दी का बना "शाह अरजान की दरगाह" पश्चिमी दरवाजा के बाहर था जहाँ पहले से एक बौद्ध विहार था। यूरोपीय कम्पनियों द्वारा दुर्ग से बाहर कारखाने बनवाये जाने लगे। ये कारखाने प्रायः नदी के तट पर स्थित होते ताकि सूबेदारों के नियंत्रण से मुक्त रहें। पटना दुर्ग से पश्चिम की आबादी उस समय काफी बढ़ने लगी जब बड़े-बड़े यूरोपीय अधिकारियों अपना निवास-स्थान पश्चिमी पटना में बनाने लगे। पूर्वी पटना आज भी पुराना शहर माना जाता है और बड़े-बुजुर्ग आज भी इसे अजीमाबाद या सिटी के नाम से पुकारते हैं।

शहीद, वीर तथा संत गुरु गोविन्द सिंह का जन्म दिसम्बर 1666 ई० में पौष सुदी 7 को पटना सिटी में हुआ। उन्हीं के समय से पटना सिटी का पवित्र हरमंदिर सिक्खों का एक पवित्र तीर्थस्थल है।

अकबर के शासनकाल के दौरान पटना में 1574 ई० में भयंकर बाढ़ आयी। बिहार का गवर्नर मुनीम खान था। बाढ़ से सुरक्षा के लिए उसने अकबर से घोड़ा और सेना की मांग की। बंगाल का शासक बाढ़ के दिनों में पटना में था और किसी तरह यहाँ से भागा।[1]

शनिवार, 24 मार्च 1621 को आलमगंज में आग लगी। आंधी बहने से इस मुहल्ले में स्थापित अंग्रेजी कारखाना नष्ट हो गया। सैकड़ों खपड़ैल मकान जलकर राख हो गए। आग पर नियंत्रण करने के सारे प्रयास विफल रहे। 300 से अधिक स्त्रियों, पुरुषों एवं बच्चों की लाश देखने को मिली।[2]

1670-71 में पटना में सूखा पड़ा जिसका मार्मिक वर्णन दे ग्राफ (De Graaf) ने किया है। उस समय वह पटना में ही था। भूख से

1. सी० एम० अग्रवाल, नेचुरल कालामिटिज एण्ड द ग्रेट मुगल्स, बोधगया, 1983, पृ० 67
2. वही 83

मरने वालों की संख्या तय करना सम्भव नहीं था। सड़कों, गलियों एवं बाजारों में पड़ी लाशों को कोई उठाने वाला नहीं था।[1] मरने वालों की संख्या हजारों में थी। खाद्य सामग्रियों का भाव आकाश छूने लगा था। इस प्राकृतिक प्रकोप के बाद रोटी-चावल बाजार में मिलना मुश्किल हो गया। रोटी की तलाश में हजारों लोग पटना छोड़ ढाका (बंगला देश) चले गए। एक बार भर पेट भोजन के लिए माँ अपने बेटे को गुलाम के रूप में बेच दिया करती।[2]

पटना में सूखा और उससे पीड़ित लोगों के बारे में जॉन मार्शल[3] ने बताया कि प्रतिदिन लगभग 300 लोग मरते। सूखा का प्रकोप चार पाँच माह तक रहा। व्यक्ति का शरीर मरने से पूर्व बाहर से बर्फ के समान ठंडा और भीतर से आग के समान गर्म हो जाता था। 8 अगस्त 1671 को वह लिखता है, "अबतक लगभग 20,000 लोग मर चुके हैं।" 7 नवम्बर 1671[4] को उसने लिखा, "13,54,000 लोग पटना और आसपास के क्षेत्र में मर चुके हैं।" 11 दिसम्बर 1671 को चबुतरा (पटना) के कोतवाल को सूचना मिली कि एक वर्ष में लगभग 1,30,000 लोग सूखा से मरे जिनमें मुसलमान 50,000 थे। करीब 1,50,000 लोग भोजन की तलाश में पटना से ढाका गए।[4] इस प्रकोप से तंग आकर दो धनाढ्य व्यापारी भोजन के अभाव में कुंआ में डूबकर मर गए। सैकड़ों स्त्रियों अपने बच्चों के साथ डूबकर ने जान दे दी।[5]

1670-71 में खाने की वस्तुओं एवं अन्य सामानों के अभाव में अपार वृद्धि हुई। एक रुपया में लगभग 7 सेर बढ़िया चावल या 16 सेर साधारण चावल या गेहूँ मिलता। सात रुपये में एक मन तेल और साढ़े सात रुपये में एक मन घी मिलने लगा। बकरे का मांस 2 रुपये में एक मन, गाय का मांस डेढ़ रुपये में एक मन और पाँच मुर्गा एक रुपया में मिलने

---

1. सी० एस० अग्रवाल, नेचुरल कालामिटीज एण्ड द ग्रेट मुगल्स, बोधगया, 1983, पृ० 42-3
2. वही, 44
3. वही, 88
4. वही, 131
5. जे० एन० सरकार, स्टडीज इन इकनॉमिक लाइफ इन मुगल इण्डिया, पृ० 252
6. पी० शरण, द प्रोमिसियल गॉवर्नमेंट ऑफ द मुगल्स, पृ० 433

लगा। जलावन लकड़ी एक रुपया में चार मन, चार-पाँच आने में एक गुलाम और एक रुपया में एक स्वस्थ नौजवान गुलाम खरीदा जा सकता था।[1]

सिक्खों के नौवें गुरु तेगबहादुर सिंह दिल्ली के शाही फौज से बचते हुए आसाम की तरफ जा रहे थे। उनकी गर्भवती पत्नी माता गुजरी भी उनके साथ थी। माता गुजरी को उन्होंने बीमारावस्था में पटना के आधुनिक हरमंदिर गली में एक धनी स्वर्णकार के यहाँ रख वे अकेले आसाम की ओर गये। 22 दिसम्बर 1660 को स्वर्णकार के घर माता गुजरी ने जिस बच्चे को जन्म दिया उसका नाम गुरु गोविन्द सिंह पड़ा।[2] गुरु गोविन्द सिंह जब नौ वर्ष की आयु के थे तो उनके पिता का देहान्त 1669 में हो गया। जन्म से नौ वर्ष तक गुरुगोविन्द सिंह पटना में अपनी माँ के साथ व्यतीत किये। वे दसवें गुरु हुए और पटना छोड़ पंजाब चले गये।[3] जिस स्थान पर गुरुगोविन्द सिंह का जन्म हुआ उसका धार्मिक महत्व बढ़ा। इस स्थान पर महाराजा रणजीत सिंह के समय एक गुरुद्वारा बनवाया गया जिसका नाम तख्त श्री हरमंदिर पड़ा। ज्यादातर सिक्ख इसे पटनाशरीफ कहते।

गुरु गोविन्द सिंह के इस जन्म स्थान का दर्शन करने पंजाब से सिक्खों की टोलियाँ आती रहतीं। गुरु गोविन्द के जन्म दिन के अवसर पर एक बड़ा जुलूस (गायघाट के पास गंगापुल के सटे) सिख मंदिर से निकल मुख्य गुरुद्वारे तक जाता। इस दिन यह इलाका 'सिक्खों का पटना' लगता। आजादी के पूर्व यह जुलूस साधारण ढंग से निकलता लेकिन बाद में इसका महत्व बढ़ गया।

1702-03 में औरंगजेब ने अपने आखिरी दौर में बंगाल, उड़ीसा एवं बिहार की सूबेदारी अपने पोते राजकुमार अजीमुश्शान को दे दी। अजीम[3]

---

1. कयामुद्दीन अहमद, पूर्वोद्ध
2. सय्यद बदरुद्दीन अहमद, हकीकत भी कहानी भी (उर्दू) बिहार उर्दू अकादमी, पटना 1985, पृ० 244
3. अजीमुश्शान का व्यक्तिगत नाम अजीम था। 1707-08 के उसे अजीमुश्शान की उपाधि से वह अलंकृत किया गया था। औरंगजेब का पुत्र बहादुर शाह प्रथम (1707-1712) था। बहादुरशाह प्रथम का दूसरा पुत्र अजीमुश्शान था। वह 1712 में उत्तराधिकार के युद्ध में मारा गया। उसका बेटा फर्रुखसियर (1713-1719) बादशाह बना।

एक वीर और कुशल योद्धा एवं शासक के साथ-साथ शौकिन मिजाजी भी था। इस विशाल प्रदेश का प्रशासक दीवान मुर्शिद कुली खाँ था जिससे अजीमुश्शान को नहीं पटती थी। 1704 में उसे औरंगजेब ने पटने की गवर्नरी दे दी और अजीम पटना में रहने लगा। पुराने पटना को नये ढंग से बसाते हुए इस शहर का नाम अपने दादा औरंगजेब की आज्ञा से 1704 में उसने अजीमाबाद दिया। पटना में अजीम ने एक टकसाल स्थापित किया और उसी द्वारा यहाँ से बनवाये गए सिक्कों पर पटना शब्द 1705-6 में प्रयोग किया गया। अजीम की इच्छा अजीमाबाद को शाहजहाँबाद (दिल्ली) के समान बना देने की थी। मुहल्लों की संरचना इस प्रकार की गई कि अजीमाबाद की सुन्दरता बढ़ गई। पुराने लोगों के हटाया नहीं गया। लोदियों के मुहल्ले का नाम **लोदी कटरा** पड़ा। इस मुहल्ला के पास मुगल सेना और अधिकारी जहाँ रहते उसे **मुगलपुरा** कहा गया। कश्मीर के व्यापारी एवं अन्य धनी लोग जहाँ बसे वह **कश्मीरी कोठी** कहलाया। हिन्दू उमरा, नबाब और व्यापारियों के कारण गंगा नदी के किनारे **दीवान मुहल्ला** आबाद हुआ। शेरशाही खानदान के लोग जहाँ रहे उस मुहल्ले का नाम [illegible] रखा गया। मध्यमवर्गीय लोग जहाँ रहते वह **दौलतपुर** (दौलत की जगह) कहलाया और आज धौलपुरा के नाम से जाना जाता है। उलेमा, साहित्यकार, कवि एवं शायरों का मुहल्ला **मैदानेफसाहत** के नाम से था। **सद्रुस्सुदूर** (चीफ जस्टिस) के रहने से पूर्व **सदर की गली** और भी सदरगली के नाम से मशहूर है।

पेशे के नाम पर अजीम ने कई मुहल्लों का नाम रखा। जिस गली में फौज के लिए तीर और कमान बनाने वाले रहते उसका नाम **कमानगर की गली** कहलाया जो आज कमंगर गली के नाम से जाना जाता है। कंघी बनाने वालों का मुहल्ला **कंघिया टोली** कहलाया। पान बेचने वालों का मुहल्ला **पानदारी** और बकरीहट्टा में **बकरियाँ** बेची जाती थीं। नमक का बाजार **नुनगोला** कहलाया। चार ऊँचे टीले (मकबरे) चार बुजुर्गों के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन टीलों से लगे जो मुहल्ले आबाद हुए उनके नाम उन बुजुर्गों के नाम पर **मेंहदीगंज, जाफरगंज, मारुफगंज** और **मंसूरगंज** पड़ा।[1] अजीम इस तरह अजीमाबाद को सुन्दर बनाने में व्यस्त था कि औरंगजेब की बीमारी की खबर उसे मिली और दिल्ली चल पड़ा। अजीमाबाद को दुल्हन की तरह सजाने के लिए

---

1. सय्यद बदरुद्दीन अहम्मद, वही पृ० 230-40

वह करोड़ों रुपये रखा था जिन्से अपने साथ दिल्ली लेता गया। अजीम फिर नहीं लौटा। अजीमाबाद की किस्मत उसी के साथ बंधी थी। इस शहर की अधूरी बनावट उसके अचानक मरने के कारण अधूरी ही रह गई।

हुसैन अली खां फर्रूखसियर के शासन काल में "अमीरूल उमरा" (अमीरों का अमीर) की उपाधि से विभूषित किया गया। शाहजादा मुहम्मद अजीम की सूबेदारी के बाद बहादुरशाह की सल्तनत के जमाने में में भी हुसैन अली अपने पद पर बना रहा। 4 वर्षों से अधिक समय तक शासन करने के पश्चात् मुहर्रम 1123 हिजरी में बहादुरशाह मरा और उसके बेटों में गद्दी के लिये युद्ध छिड़ गया। इस लड़ाई में हाथी के साथ रावी नदी में मारा गया। उसका बड़ा भाई मुइजुद्दीन जहांदारशाह ने विजय पाकर गद्दी पर बैठा और 10 माह तक शासन किया। हुसैन अली खां अपने पद पर इस समय तक बना रहा।

1122 हिजरी में फर्रूखसियर का पटना में स्वागत हुआ। अजीमुशान के साथ उसका बेटा करीमुद्दीन भी साथ चला गया और अपने दूसरे बेटे फर्रूखसियर को अपने हरम और कुछ अन्य बहुमूल्य वस्तुओं के के साथ अपना उत्तराधिकारी बना दिया। बहादुरशाह ने मरने से पूर्व अजादुद्दौला खान खानान बहादुर को बंगाल का सूबेदार और अपने पोते फर्रूखसियर को अपने पास अजीमाबाद रख लिया। फर्रूखसियर अजीमाबाद के नवाबशहर (बाग जाफर खां) में ठहरा। आज का बिहार कॉलेज ऑफ इन्जीनीयरिंग के (पटना विश्वविद्यालय) वाले मैदान में 18 वीं शताब्दी में "मीर अफजल का बाग" था। फर्रूखसियर का राज्यारोहण मीर अफजल के बाग में हुआ। नक्षत्रविद्या के विशेषज्ञों एवं फकीरों ने फर्रूखसियर को राय दी कि अगर अपना राज्यरोहण वह अजीमाबाद में कराता तो भावी सुल्तान वही बनता। राज्यारोहण के बाद जिस मस्जिद में नमाज पढ़ा वह मस्जिद मोलकपुर (इन्जीनीयरिंग कॉलेज के पास) में आज भी स्थित है।

राजकुमार द्वारा कई राजकीय भवन एवं सराय बनवाये गये। इस सिलसिले में अनेक राजमिस्त्री अजीमाबाद में बस गये। राजनीतिक उथल-पुथल (1707-22) एवं दिल्ली के रक्तसंहार (1738-39) के कारण अजीमाबाद की आबादी और महत्त्व बढ़ गया। यह दिल्ली वालों का एक शरणस्थल बन गया। बड़े-बड़े विद्वान, कवि, सूफी एवं इतिहासकार

अजीमाबाद में बस गये। गुलाम हुसैन खाँ तबतबाई एवं नवाब अली इब्राहीम खाँ जैसे प्रसिद्ध इतिहासकार अजीमाबाद में बस गये। अब्दुल क़ादिर नामक कवि जिन्हें बेदिल के नाम से भी जाना जाता है, अजीमाबाद में बस गये। दीवान नामक प्रसिद्ध फारसी कविता संग्रह के लेखक राजा राम नारायण जिन्हें मौजून के नाम से भी जाना जाता है 1750 ई० में अजीमाबाद आ गये। राजा सिताब राय के पुत्र महाराजा कल्याण सिंह ने **खुलसतुत तवारिख** नामक इतिहास ग्रंथ की रचना यहीं की। इनके अलावे अनेक अप्रकाशित ग्रंथों के लेखकों ने अजीमाबाद को भारत और फारस की संस्कृतियों को आपस में जोड़कर एक नवीन संस्कृति से अजीमाबाद को अलंकृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उर्दू साहित्य को विकसित करने में दिल्ली और लखनऊ की भूमिका भले ही महत्वपूर्ण मानी जाय लेकिन अजीमाबाद की भूमिका उर्दू को विकसित करने में इन दोनों शहरों से कम नहीं रही।

मुर्शिद कुली खाँ के पोता नवाब सरफराज खाँ को हराने के बाद नवाब अलीवर्दी खाँ महावत जंग ने 1734 से 1765 तक अपना प्रशासनिक केन्द्र अजीमाबाद में स्थापित कर बिहार और बंगाल के क्षेत्रों पर स्वतन्त्र रूप से शासन किया। उसने अपने भतीजे एवं दामाद जैनुद्दीन हैबत जंग को बिहार का अधिकारी (1740-48) में नियुक्त किया। 1749 के बाद अजीमाबाद को राज्य के विरोधी सिपाहियों एव सेनानायकों ने आंतरिक युद्ध का वातावरण बनाकर बरबाद कर दिया।

18वीं शताब्दी में दिल्ली से सम्बन्ध तोड़कर बिहार बंगाल की राजनीति से जुड़ गया। पलासी के युद्ध (1757) में अंग्रेजों द्वारा पराजित मुगल राजकुमार अली गौहर 1749 में अजीमाबाद आकर अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया। अंग्रेजों से सहायता पाकर राजा रामनारायण ने राजकुमार अलीगौहर को अजीमाबाद से निकालने का प्रयास किया। लेकिन अनेक कारणों वश ऐसा हो नहीं सका। अंग्रेजों के प्रारम्भिक शासन काल में बिहार बंगाल का हिस्सा हो गया।

प्रशासन

मध्यकालीन भारतीय इतिहास पर गौर करने पर हम पाते हैं कि मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर के समय में पटना सुल्तान महमूद नूरानी के हाथों में था।[1]

1. सैयद हसन अस्करी "बिहार अण्डर बाबर एण्ड हुमायू" करेंट स्टडीज, पटना कालेज मैगजीन, 1957

हुमायूँ के काल में हाजीपुर, मुंगेर और सासाराम के अलावे पटना का भी महत्त्व था। **तारीख-ए-शेरशाही या तोहफत-ए-अकबरशाही**[1] का लेखक अब्बास खाँ सरवानी बतलाता है कि जब शेरखाँ (शेरशाह) ने सुना कि हुमायूँ बंगाल की ओर रवाना हो गया है तो वह कुछ सवारों के साथ छुपके चल दिया। जब बादशाह पटना पहुँचा तो सात कोस आगे रवाना की गई सेना अपने स्थान पर नहीं पहुँची था।

ईश्वरी प्रसाद के अनुसार शेरखाँ पटना आया था और एक बिचौलिये के माध्यम से सुल्तान जुनैद बरलास से संधि करना चाहता था।[2] इस समय तक पुनः पटना ने एक प्रशासनिक केन्द्र के रूप में अपना अस्तित्व बना लिया था। इस इतिहासकार के ही अनुसार[3] 'शेरशाह 1537 ई० में पटना में अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए सफल प्रयास करने लगा और यहाँ के विरोधियों को उसने उखाड़ फेंका। पटना के पास भी हुमायूँ और शेरशाह के बीच तनाव बढ़ा था। पटना का महत्त्व इसलिये भी बढ़ता जा रहा था कि बंगाल पर प्रभुत्व जमाने के लिये पटना को जीतना शेरशाह और हुमायूँ दोनों आवश्यक समझ रहे थे। हुमायूँ पटना को प्रमुख केन्द्र बना चुका था।

शाहजहाँ के काल में प्रशासनिक दृष्टिकोण से पटना को शाइस्ता खाँ और उसका बेटा देख-भाल कर रहे थे। शाइस्ता खाँ का बेटा 2 अक्टूबर 1641 में पटना का गवर्नर बना। शाइस्ता खाँ ने पलामू के शासक को हराया और पटना के गवर्नर के अधीन रहने को बाध्य किया। पलामू के शासक ने पुनः विद्रोह कर दिया। धारवा राय तथा तेज राय नामक दो हिन्दू भाई ने इस विद्रोही शासक को बन्दी बनाकर पटना ले आये।[4]

अकबर की मृत्यु के समय तक पटना घनी आबादीवाला नगर बन चुका था। वहाँ आज की तरह 'आवास-क्षेत्र' अलग-अलग होता था। वहाँ के व्यापारियों के घरों के बाहर सामान्यतः काफी बड़े बगीचे होते

1. इलियट एवं डाउसन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाय इट्स ओन हिस्टोरियन्स, भाग-4, पृ० 274
2. द लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ हुमायूँ, इलाहाबाद, 1976, पृ० 108
3. वही, पृ० 116
4. बनारसी प्रसाद सक्सेना, हिस्ट्री ऑफ शाहजहाँ ऑफ डेल्ही, इलाहाबाद, 1973, पृ. 118-19

थे लेकिन परिवार चहारदीवारियों के अन्दर ही रहता था और कारोबार के स्थान भी भीतर ही हुआ करते थे। इनमें से कुछ घर तो काफी बड़े और आरामदेह होते थे, हालाँकि बाहर से देखने में वे ऐसा आभास नहीं देते थे।[6]

सड़कें

अलबिरूनी[1] के अनुसार पटना से एक सड़क पूरब की ओर मुंगेर होती हुई गंगासागर तक जाती थी। वही सड़क पटना से पश्चिम की ओर बनारस-अयोध्या होते हुए बारी (आगरा की एक तहसील) तक जाती थी। ग्रैण्ड ट्रंक रोड, जिसे **सड़क-ए-आज़म** भी कहते हैं, काफी पुराना है। मौर्यों के समय यह सड़क पाटलिपुत्र से पुष्कलावती तथा दूसरी तरफ पाटलिपुत्र से ताम्रलिप्ति तक जाती थी। पीटरमंडी[2] ने 1632 ई० में इस सड़क का उल्लेख किया है जो पटना से आगरा को जाती थी। सितम्बर, 1632 के आसपास वह इसी सड़क से आगरा से पटना तक आया था।

पटना से एक सड़क बनारस होते हुए मुरादाबाद-दिल्ली-सड़क उस काल में प्रचलित थी। बनारस, डलमऊ, कड़ा, सेला, रायबरेली, मुरादाबाद, अमरोहा, बगाली, गढमुक्तेश्वर, बागसर, हापुड़, डाना, गाजीउद्दीन नगर, शाहदरा आदि से पटना जुड़ा था। बहादुरपुर, सैयद राजा मोहनिया की सराय, नूरुद्दीनाबाद, सासाराम, दाऊदनगर, अरवल (सोनपुर) तथा आगा सराय होते हुए यात्री तावर्नियर बनारस से पटना पहुँचा था।

तावर्नियर के अनुसार आगरा-पटना-ढाकावाली सड़क आगरा से फिरोजाबाद, इटावा तथा औरंगाबाद होते हुए इलाहाबाद पहुँचती थी। इस सड़क का प्रयोग व्यापारी भी करते थे। गंगा के मैदान का उत्तरी पथ दिल्ली से मुरादाबाद होकर पटना आता था। मुगलकाल में सड़कें उन शहरों से होकर गुजरने लगी, जो मुसलमानी काल में बने थे।

उन्नीसवीं सदी का लेखक ख्वाजा अब्दुल करीम खाँ अपनी पुस्तक **बयान-ए-वाकी**[3] में पटना को अजीमाबाद कहता है और

---

1. डब्लू० एच० मोरलैण्ड, **अकबर की मृत्यु के समय का भारत**, दिल्ली, 1976 पृ. 6, 9 और 36
2. सचाऊ, **अलबिरूनीस इण्डिया**, भाग—एक, लण्डन, 1910, पृ० 200-07
3. **द ट्रावेल्स ऑफ पीटर मंडी** सं० टेम्पुल, भाग-2 पृ० 67 इत्यादि।
4. इलिएट एवं डाउसन, **वही** भाग 8, पृ० 96)

बतलाता है कि तिरहुत से अजीमाबाद आने के लिए नदी पार करना पड़ता था। पुरनिया (आधुनिक पूर्णियाँ) होकर स्थल मार्ग से भी अजीमाबाद पहुँचा जा सकता था। उसके अनुसार, 'अजीमाबाद (पटना नगर) में घनी बस्ती है और यह बड़ा स्वच्छ नगर है। गंगा-जमुना और इस जिले के नहरों का पानी एकत्र होकर नगर के पास से बहता हुआ बंगाल से होकर समुद्र में पहुँचता है। यहाँ यूरोपियन लोगों ने अच्छे मकान बना लिये हैं और व्यापार में लगे हैं। यहाँ के पान बहुत अच्छे होते हैं। लोग यहाँ के पान को हाथों-हाथ दूर-दूर ले जाते हैं। अजीमाबाद का चावल बंगाल के चावल से अधिक स्वादिष्ट होता है। धनवान लोग इनको खरीदते और खाते हैं।"

अजीमाबाद के साथ ही इस शहर को पटना के नाम से शेरशाह के काल में ही जाना जाने लगा था। अजीमाबाद प्रायः मुसलमानों के बीच ज्यादा प्रचलित रहा और वह भी कुछ वर्षों के लिए। अजीमाबाद की संस्कृति बाद के वर्षों को स्पर्श करती रही।

अजीमाबाद की कुर्सी पर पटना आसन जमा लिया लेकिन पटना सिटी में अजीमाबाद[1] अपने ऐतिहासिक रूप में आज भी हाजिर है। अजीमाबाद को देख लगता नहीं कि अजीमुशान जंगी मिजाज वाला था। अजीमाबाद को देख ऐसा लगता कि चन्द वर्षों में ही अजीम ने हजारों सदियाँ तय कर ली थीं।

तवायफें

पाटलिपुत्र की वेश्याएं अजीमाबाद में तवायफें कहलायीं। मौर्य-कालीन वेश्याएं अनेक कलाओं में निपुण थीं। सभ्यता के उदय और नगरीकरण की अनेक विशेषताओं में प्रमुख विशेषता वेश्याओं की उपस्थिति रही है। सैकड़ों उदाहरण इस बात के मिलते कि वीरान इलाके को वेश्याओं ने नगरों में बदल दिया। मौर्यकाल में वेश्यावृत्ति का सरकारी-करण था। विदेशों से मधुर सम्बन्ध बनाने, विदेशी मेहमानों का पाटलि-

---

1. अजीमाबाद के साथ-साथ पटना नाम भी काफी प्रचलित रहा। स्रोतों का तुलनात्मक अध्ययन करने से ऐसा लगता है कि अजीमाबाद नाम बहुत कम समय के लिए कुछ ही लोगों के बीच प्रचलित रहा। व्यापारिक महत्व के कारण पट्टण से पटना शब्द ही ज्यादा प्रयोग किया जाता रहा। शेरशाह के काल से ही पटना शब्द मिलने लगा था।

पुत्र में स्वागत करने, सम्राट् का मनोरंजन करने, साम्राज्य की सुरक्षा, गुप्तचरी, नृत्य, आदि में वेश्याओं की भूमिका अद्वितीय रही। वेश्याओं या गणिकाओं से सम्बंधित अनेक नियमों की जानकारी कौटिल्य के **अर्थशास्त्र** से होती है। मौर्य साम्राज्य का संस्थापक महान सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य का जन्म सम्भवत: किसी वेश्या के गर्भ से हुआ था।

मौर्य काल में वेश्याओं (गणिका या मंगलमुखी) को ठाठ-बाट का नमूना माना जाता था। पाटलिपुत्र में प्रत्येक मंगल कार्य तब तक अधूरा बना रहता जब तक वेश्या उसका मंगलाचरण न करे। वेश्या की पुत्री को वेश्या का ही काम करना पड़ता था। वे प्रतिष्ठित घरानों की भी होतीं। एक निश्चित रकम भुगतान कर वेश्या अपना पेशा छोड़ सकती थी। एक शासक कम से कम तीन वेश्या निश्चित रखता था। अशोक की निजी रखैलें तो तीन से अधिक थीं। राजकीय वेश्याओं का वेतन देख लगता कि वे राजतंत्र के उच्च मुकुट के समान थीं। मुख्यमंत्री और सेनापति को जितना वेतन मिलता, मौर्य कालीन राजकीय वेश्याओं को भी उतना ही वेतन मिलता। सौन्दर्य तथा कामवासना इनकी योग्यता का मानदण्ड था। जो वेश्या सम्राट् का छत्र धारण करती वह **कनिष्ठा**, जो सम्राट् को पंखा झलती वह **मध्यमा** और तीसरी श्रेणी की वेश्या **उत्तमा** कहलाती जो सम्राट् के साथ सिंहासन, पालकी और रथ में बैठती थी। पाटलिपुत्र की वेश्याओं का न केवल सेवन बल्कि उनका खुला प्रदर्शन भी किया जाता था। मौर्य एवं कुषाणों के काल में वेश्यावृत्ति एक सामाजिक प्रथा बन गयी।

सौन्दर्य नष्ट के बाद राजकीय वेश्याएँ **कोष्ठागार** या **महानस** (लंगर) का प्रबन्ध करती थीं। एक ही व्यक्ति के घर में बैठना चाहती तो वह व्यक्ति प्रति माह सवा पण देता था। वेश्याओं पर राजतंत्र का कड़ा कानूनी नियंत्रण था। पाटलिपुत्र में वेश्याओं के मुहल्ले थे। **गणिकाध्यक्ष** हिसाब रखता कि रात में कौन उसके पास आता और किस वेश्या को कितना धन मिला। कामनारहित वेश्या के साथ भोग करने वाला कठोर दण्ड का भागी होता। राजाज्ञा से वेश्या को किसी भी व्यक्ति के पास भेजा जा सकता था। यदि किसी पुरुष के पास जाने से वह मना करती तो उसे कठोर दण्ड दिया जाता। रात में साथ रहने की फीस लेकर फिर आनाकानी करने वाली वेश्या को दुगनी फीस लौटानी पड़ती। यदि वह पूरी रात किस्से-कहानियों में गुजार देती थी तो फीस का आठ गुना हरजाना भरती थी।

अशोक के काल में वेश्याओं की विशेष मान प्रतिष्ठा थी। बौद्ध-साहित्य मिलिन्द प्रश्न[1] के अनुसार एक दिन मौर्य सम्राट् अशोक गंगा नदी देखने गये। नये पानी के आ जाने से गंगा लबालब भर गई थी। साथ आये बड़े-बड़े लोगों से अशोक ने पूछा—"क्या तुम लोगों में ऐसा कोई है जो गंगा नदी की धारा को उलटी बहा दे?" सभी ने इसे असम्भव बताया। उस समय बिन्दुमती नाम एक वेश्या गंगा तीरे आयी थी। उसने अपने सम्राट् के इस प्रश्न को सुना और मन में बोली—"मैं तो इस पाटलिपुत्र नगर में अपने रूप को बेचकर जीने वाली एक गणिका हूँ। मेरी जीविका बहुत ही नीच कोटि का है। किंतु, तो भी राजा मेरे सत्य-बल को देख लें! तब उसने अपना सत्य-बल लगाया। उसके सत्य-बल लगाते ही गंगा नदी उलटी धार हो कलकलाकर बहने लगी। सभी लोग देखते रह गए। अशोक आश्चर्य से भर गये और साथ आए मंत्रियों और अधिकारियों से पूछने लगे—"अरे! यह गंगा नदी उलटी धार कैसे बहने लगी?" "महाराज! आपके प्रश्न को सुन वेश्या बिन्दुमती ने अपना सत्य-बल लगाया, उसी से गंगा नदी ऊपर की ओर बहने लगी है।" अशोक आश्चर्यचकित होकर बिन्दुमती से पूछा—"क्या सचमुच तुम्हारे सत्य-बल लगाने से गंगा नदी उलटी धार वह रही है? अरे, तुम जैसी चोरनी, ठगनी, बुरी छिनाल हद दर्जे की पापिनी, बुरे कामों को करने वाली, काम से अंधे बने लोगों को लूटकर जीने वाला तुम औरत के पास आत्म-बल कैसा?" बिन्दुमती ने जवाब दिया—"महाराज! आप जैसा कहते ठीक वैसी ही औरत मैं हूँ, इसके बावजूद मुझमें सत्य-बल का इतना तेज है कि मैं उससे देवताओं और मनुष्यों के साथ इस लोक को भी उलट सकती हूँ। महाराज! चाहे क्षत्रिय, या वैश्य, या शूद्र, जो भी मुझे एक बार मेरी फीस देता मैं सभी को बराबर समझकर सेवा करती हूँ। न क्षत्रियों को ऊँच और न शूद्रों को नीच समझती हूँ। मेरा सत्य-बल यही है जिसके द्वारा गंगा नदी को उलटी धार बहा दिया।

पाटलिपुत्र अजीमाबाद के दलहीज पर पहुँचा। वेश्याएँ मनोरंजन का साधन बनी रहीं। गजल, नृत्य, संगीत, मुजरा, कौव्वाली आदि प्रसिद्ध हो गया। शादी-व्याह के अवसर पर जयपुर, लखनऊ, आदि शहरों से भारत प्रसिद्ध तबायफें यहाँ आने लगीं। धार्मिकोत्सव के अवसर पर

1. मिलिन्द प्रश्न अनुवादक, भिक्षु जगदीश कश्यप, नागपुर, 1986, पृ. 147-48;

नृत्य का शानदार प्रोग्राम आयोजित किया जाता। दिन भर के थके सेठ-साहुकार शाम को मनोरंजन के लिये कोठे पर जाते। बड़े-बड़े अधिकारियाँ एवं जागीरदारों को पारिवारिक कलह से मुक्ति पाने के लिए तवायफों की शरण में जाना पड़ता। कहते हैं, दिल की बिमारी नहीं होती उसे जो शाम तवायफों के साथ व्यतीत करता।

अजीमाबाद के पश्चिम में आधुनिक चौहट्टा के सुनसान इलाके में तवायफों ने 1800 ई० के आसपास से रहना शुरू कर दिया जहाँ अजीमाबाद के शरीफजादे गुप्त रूप से पहुँचने लगे थे। सेना और व्यापार के लिए आने वाले बाहरी लोगों का यह मनोरंजन केन्द्र बनने लगा। छोटे-मोटे लोगों के लिए सस्ती वेश्याएं भी रहने लगीं। लगभग आधुनिक खजांची रोड के पास से पुरब में मुसल्लहपुर भट्ठी तक रोड के दक्षिण में वेश्याएँ रहती थीं। आधुनिक कुनकुन सिंह लेन और गुलाब बाग का इलाका रखैलों का हो गया। धनी वैश्य, राजपूत, हज्जाम एवं धनी लोगों ने कलकत्ता से वेश्याओं को लाकर कुनकुन सिंह लेन के आसपास बसा दिया। आधुनिक दरभंगा हाउस जहाँ आज स्नातकोत्तर विषयों की पढ़ाई होती, के दक्षिण में स्थित चर्म विभाग का भवन स्थित है। वहाँ पहले नवाबों द्वारा डांसिंग-हॉल बनवाये गए जहाँ महंगी तवायफें बुलायी जातीं। रामायण सिंह को चाय की दुकान इसी चर्म विभाग के उत्तर में जिस भवन के कोने पर स्थित है वह नवाबी भवन था।

पटना सिटी में 1850 के आसपास गुजरी के नवाब सैयद इब्राहीम हुसैन खां ऊर्फ मंझले नवाब खां ने अपने साले मुनीर नवाब की शादी में पांच दिनों का नृत्य प्रोग्राम आयोजित किया जिसमें बाहर से तवायफें बुलायी गयीं। इस अवसर पर दिल्ली एवं कलकत्ता से सौ के लगभग अंग्रेज अधिकारी आए और चुस्त पजामा, कुरता और टोपी पहन नृत्य प्रोग्राम देखा। न्यायधीश सैयद सर्फुद्दीन ने अपने इकलौते बेटे सैयद अहमद सर्फुद्दीन की शादी के अवसर पर दो दिनों की महफिल सदरगली में आयोजित की। एक नाचघर बनाकर उसे अलंकृत किया गया। इसमें पटना के अलावे बाहर की तवायफें बुलायी गयीं। इस अवसर पर अनेक अंग्रेज अधिकारी निमंत्रित किये गए थे। यह जमाना सर अली इमाम और न्यायधीश सर्फुद्दीन का था।

धौलपुर कोठी में बाबु कृष्णा की शादी हुई। इस अवसर पर जो महफिल सजायी गई वह बड़े महफिलों में से एक थी बाबु भगवत नारायण

सिंह बख्शी मुहल्ला में रहते और पटना के बड़े रईस थे। उनके इकलौतें बेटे जमना प्रसाद की शादी में दो दिनों की महफिल देखने लायक थी। 1913-14 में मुहल्ला लोदी कटरा में मरि किफायत हुसैन के बड़े बेटे बैरिस्टर मंजूर हुसैन की शादी में दो दिनों की शानदार महफिल सजायी गई। इस अवसर पर चौधराइन बचवा नामक नर्तकी का गिरोह और मुस्तफा हुसैन भांड का दल लखनऊ से आया था। पटना सिटी के सैयद नजमुल हसन की शादी में हिन्दुस्तान की मशहूर गायिका जयपुर की गोहर बाई बुलायी गई थी। जयपुर से बाहर जाकर वह प्रथम बार नाची थी।

संगीत के फन में जोहराबाई लाजवाब थी। आगरा की वह रहने वाली थी और 1885 ई० में अपनी मां के साथ बाल्यावस्था में महाराजा दरभंगा के दरबार में पहुँची। महाराज दरभंगा की दरियादिली उस समय भारत में प्रसिद्ध थी। वे भारतीय संगीत के प्रेमी थे। दरभंगा में प्रशिक्षित हो जोहरा बाई अपनी मां के साथ पटना में आकर बसी। अपनी कला के बल वह हिन्दुस्तान की प्रसिद्ध तवायफ बनी। 1900 ई० के आस-पास जोहराबाई के कोठे पर स्कूल और कालिज के कुछ छात्र पहुँचे। सुरत देखते ही जोहराबाई उनकी शराफत पहचान गई। काफी आवभगत करने के बाद आने का कारण पूछी। छात्रों के बताने पर कि वे गाना सुनने आये हैं, तुरन्त तैयार होकर दो घण्टे तक लगातार उन्हें गाना सुनाती रही और तब हँसकर लड़कों को विदा की। जब जिन्दगी थमने-सी लगी, वह किसी की बीबी बनी। फेफड़ा खराब होने के कारण वह मर गई। जोहरा बाई को शाह अकबर साहब दानापुरी से बड़ा लगाव था। सांवली, लम्बा छरहरा और बड़ी-बड़ी आंखों वाली जोहराबाई आलीशान का कोठा मच्छरहट्टा में था। उसकी इकलौती बेटी हैजा से मर गई।

अल्ला जलाई नामक अति सुन्दरी और कोकिल कंठ वाली नृत्यांगना 1902 ई० में इलाहाबाद से चौक सिटी पटना आयी। सारा पटना उसपर जान देने को तैयार रहता। अपनी फीस उसने कभी नहीं मांगा लेकिन देने वालों की संख्या असंख्य थी। साधारण आदमी की पहुँच से बाहर थी अल्ला जलाई। उसका घर कश्मीरी सनभाइका, हाथी दांत, बेल्जियम के बने 500 कमलनुमा झाड़, चांदी के आइने, गमले और गुलदान आदि बहुमूल्य सामग्रियों से अलंकृत थे। उसके घर में संगमरमर की छोटी-छोटी और सुन्दर मेजें, रोम और ईरान की बनी कालीनें, मखमल के पर्दे आदि

देखने से एक अजीब भव्यता झलकती। ये सारी चीजें उसकी सुन्दरता पर न्योछावर होकर गुजरी के एक नवाब ने दी थीं। पटना की प्रत्येक शानदार महफिल अल्ला जलाई के बिना सूना लगता। उसका मुजरा लाजवाब था। 17-18 वर्ष की आयु में अल्ला जलाई इलाहाबाद से पटना 1935 के आसपास आयी और 1939 तक मशहूर हो गई। मात्र चार वर्षों अर्थात् 1943 ई० तक पूरे पटने को प्रभावित कर 24 वर्ष की आयु में मर गई। मखदुम शहाबुद्दीन जगजूत के मजार (कच्ची दरगाह) के पास अल्ला जलाई का संगमरमर का मकबरा आज भी देखा जा सकता है।

1900 ई० के आसपास छठन बाई एक मशहूर तवायफ थी। संगीत और हुस्न की वह मिश्रण थी। महाराजा और नवाब से उसे फुर्सत नहीं थी। पटना के त्रिपोलिया के पास हफ्तखाना (सतघरवा) में छठनबाई रहती थी। उसके घर में गुलदान आदि वस्तुएँ चाँदी की बनी थीं। हफ्तखाना में सटे हुए सात मकान एक ही ढंग के बने थे अतः वे **सतखाना** या **सतघरवा** कहलाते थे। यहाँ के भवनों में अन्य तवायफें रहती और शाम को झरोखे पर बैठ नीचे वालों को दर्शन देतीं। नीचे एक पान की दुकान पर 14-15 वर्ष का एक लड़का खड़ा होकर प्रतिदिन शाम को छठन बाई को देखा करता। वह छठन बाई को चाहने लगा था। छठन बाई की नजर एक दिन उस लड़के पर पड़ी और अपने मुलाजिम से उसने लड़के को बुलवाया। केवांशिकोह मुहल्ले के इस लड़के का नाम अली अहमद था। बर्बाद जमींदार परिवार का वह एक अनाथ लड़का था। फीस के अभाव में उसका नाम स्कूल से कट गया था। छठन बाई ने कहा—हमसे मुहब्बत करना चाहते तो पढ़ाई जारी रखो।[1] उसने अली अहमद का नाम लिखवाया और मास्टर रखा ताकि अली अहमद ठीक से पढ़े। छठन बाई की मदद से अली अहमद पढ़ता गया। मैट्रिक बढ़िया नम्बर से पास किया। कलकत्ता के एक कॉलेज में अली अहमद का नामांकन छठन बाई ने करा दिया। बी०ए० पास करने के बाद अली अहमद का नाम छठन बाई की मेहरबानी से लॉ

---

1 विस्तृत जानकारी के लिए देखें, सैयद बदरुद्दीन अहमद, **हकीकत भी कहानी भी** (उर्दू) बिहार उर्दू अकादमी, पटना, 1988। डा० ए० आर० बेदार (डाइरेक्टर, खुदाबख्श पब्लिक ओरियंटल लाइब्रेरी, पटना) का विशेष रूप से अनुगृहीत हूँ जिनके कारण महमूद हाशमी (रिसर्च स्कालर) ने इस पुस्तक (**कहानी भी हकीकत भी**, को पढ़ा और मुझे जानकारी मिली।

कॉलेज में लिखा गया। वकालत का अन्तिम परीक्षा देने के बाद एक अच्छे परिवार में अली अहमद की शादी छठन बाई ने कराया और कलकत्ता में वे वकालत करने लगे।[1]

1900 ई० के आसपास चौहट्टा के आसपास आबादी तेज गति से बढ़ी। विदेशी व्यापारियों एवं सैनिकों के कारण 1900 ई० के बहुत पहले से ही यह इलाका तवायफों से भरने लगा था। पटना कॉलेज एवं स्थानीय लोगों के विरोध के बाद काफी मुश्किल से वेश्याओं को 1935 के आसपास इस इलाके से हटाकर सिटी में भेजा गया।।

अध्याय - 5

पटना

18वीं से लेकर बीसवीं शताब्दी तक के बीच पटना की आर्थिक स्थिति का सर्वेक्षण करें तो पाते हैं कि पलासी युद्ध के समय बंगाल की आर्थिक स्थिति प्रभावित हुई लेकिन पटना की नहीं। पटना में व्यापार ठीक से चल रहा था।[1] **स्थायी बन्दोबस्त** के अन्तर्गत पटना जिला में 1790 ई० से 1870 ई० के बीच 48 प्रतिशत भूमि से लगान वसूला गया। 19 वी० शताब्दी में बंगाल और बिहार में जमींदारों ने जमींदारी खरीदना और बेचना शुरू कर दिया। खरीदने का काम ये लोग नकली नामों से करते थे ताकि अंग्रेजों की बुरी नजर इनपर न पड़े। पटना जिले के कृषकों पर लगान की दर काफी बढ़ने लगी क्योंकि जहाँ की जमींदारी से उन्हें घाटा लगता, उसे वे बेच देते और अधिक लाभ वाला जमींदारी खरीद लेते थे। पटना के जिलाधिकारी द्वारा वेलेजली का जमींदारी से सम्बन्धित लिखे गये प्रश्नोत्तर से इन बातों की जानकारी होती है। पटना के सेट्लमेंट अधिकारी द्वारा लिखे गये कागजातों के अध्ययन से पता चलता है कि बिहार में सर्वाधिक मुनाफा कमाने वाला पटना जिले का **अमावा स्टेट** वाला था। पटना जिला का सबसे बड़ा भूमिपति यही स्टेट था।

अंग्रेज और डच व्यापारिक कम्पनियों के प्रयास से पटना सतरहवीं सदी में एक मुख्य व्यापारिक केन्द्र बन चुका था।[1] यहाँ हुए मुनाफे ने विदेशियों के अलावे अनेक भारतीय व्यापारियों को भी आकर्षित किया था। अनेक जैन व्यापारियों ने पटने में बसना शुरू कर दिया था. जिनमें सबसे प्रसिद्ध हीरानन्द शाह था, जिसने मुगल बादशाह शाहजहाँ के काल में पटना को व्यापारिक केन्द्र बनाया था। भारत के प्रसिद्ध व्यापारी जगत

---

1. **कैम्ब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया**, सं० धरम कुमार, वाल्यूम II, दिल्ली, 1984, पृ० 7

1 सुरेन्द्र गोपाल, **पटना इन द नाइनटीन्थ सेंचुरी**, कलकत्ता, 1942

सेठ का व्यापारिक एवं बैंक-शाखा पटना में हीरानन्द शाह के द्वारा स्थापित की गई थी।[2]

अठारहवीं सदी में पटना से बड़े पैमाने पर सूती वस्त्र, शोरा, जूट और अफीम एशिया और यूरोप के अनेक देशों को निर्यात किया जाता था। आस पास की कच्ची वस्तुएँ पटना में लायी जाती थीं। आधुनिक सीवान जिला अफीम का एक मुख्य केन्द्र था। जिस समय इस शहर का नाम अलीगंज था, उस समय यहाँ के जमींदार इस्माइल बाबू के समय आधुनिक श्रीनगर गाँव के पास अंग्रेजों की एक कोठी थी, जहाँ से अफीम पटना भेजा जाता था। नाव द्वारा दाहा नदी से अफीम सीवान के दक्षिण सरयू नदी तक पहुँचाया जाता था और वहाँ से नाव द्वारा वह पटना पहुँचता था। जो भी अंग्रेज अधिकारी यहाँ आता; उसे इस्माइल बाबू के पास पहले सलाम करने जाना पड़ता था। 1912 ई० में आया एक नया अंग्रेज अधिकारी जब इस्माइल बाबू के सामने सलाम करने नहीं गया तो इस्माइल बाबू ने एक पार्टी में उस अंग्रेज अधिकारी को बुलावाया और सभी मेह-मानों की उपस्थिति में उसे काफी पीटा। इस अंग्रेज अधिकारी ने इस्माइल बाबू के विरुद्ध मुकदमा कर दिया। चालीस सैनिक के साथ नंगी तलवारें लिए इस्माइल बाबू जब कोर्ट पहुँचे तो पेशकार की सलाह से वह अंग्रेज केस समाप्त कर डर के मारे भाग गया। निर्यात की जाने वाली वस्तुएँ पटने के आस-पास पैदा की जाती थीं। नेपाली वस्तुएँ भी पटने के बाजारों में बिकती थीं।[3]

मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात् पटना अठारहवीं सदी में बंगाल के नवाबों के नियंत्रण में आ गया था। इस समय पटना को विकसित करने के तमाम प्रयासों के बावजूद पटना उन्नति नहीं कर सका क्योंकि मराठों के आक्रमण और आपसी संघर्ष से बंगाल का नवाब-परिवार परेशान रहा। 1757 ई० में पलासी के युद्ध में अंग्रेज जीत गये और उनका प्रमुख केन्द्र बंगाल में स्थापित हो गया और इसी के साथ-साथ अंग्रेजों का नियंत्रण भारतीय व्यापार पर होने लगा।

---

1. सुरेन्द्र गोपाल, "जैन्स इन बिहार इन द सेवनटीन्थ सेंचुरी," **जैन जनरल**, अक्टूबर, 1973
2. हमीदा खातून नकवी, **अर्बनाइजेशन एण्ड अर्बन सेन्टर्स अण्डर द ग्रेट मुगल**, 1556-1707, शिमला, 1972

पटने में अंग्रेजों की एक बड़ी संख्या रहने लगी लेकिन मुगलकालीन पटना की घनी बस्ती में इन्हें रहना पसन्द नहीं था। स्थानीय लोगों से अंग्रेज अपने को दूर रखना चाहते थे। मुगलकालीन पटना वैसे भी काफी गन्दा था। मुगलकालीन पटना से काफी पश्चिम में स्थित दानापुर कैन्ट के पास भी अंग्रेजों को रहना पसन्द नहीं था। अतः दानापुर कैन्ट और मुगलकालीन पटना के बीच गंगा के किनारे बसना उन लोगों ने पसन्द किया। 1786 ई० में अनाज का एक गोदाम बनाया गया, जो गोलघर के नाम से जाना जाता है। बिना किसी विशेष योजना के अंग्रेजों की अनेक कोठियां गोलघर के आसपास बनीं। 1811 ई० में आनेवाले फ्रांसि बुकानन के अनुसार पटना गंगा नदी के किनारे स्थित था। जफर खान का बगीचा और आस-पास का क्षेत्र मिलाकर पटना बुकानन के समय नौ मील लम्बा था और लगभग दो मील चौड़ा था। इस तरह लगभग पटना 20 वर्गमील के दायरे में फैला हुआ था। सुरक्षात्मक दीवारों के भीतर पटना उत्तर से दक्षिण डेढ़ मील तक फैला था। अधिकांश मकान कच्ची ईंटों के बने थे। कुछ पक्की ईंटों के मकान भी थे। मुख्य सड़क पूरब से पश्चिम दरवाजे तक फैली थी। मुख्य सड़क अनेक गलियों से जुड़ी थी। बुकानन के समय मारुफगंज पूर्वी पटना में स्थित था, जहाँ काफी गोदाम थे।

काफी प्रमुख केन्द्र होने के बावजूद पटना में रहनेवाले अंग्रेजों की संख्या काफी कम थी। यहाँ एक कचहरी, एक सरकारी अतिथिशाला, नगर-जज का इजलास, मजिस्ट्रेट का ऑफिस, कलक्टर का ऑफिस, व्यापारिक कार्यालय, एक अफीम का एजेन्ट-वितरक और एक प्रांतीय सैनिक कार्यालय था। आधुनिक पटना मेडिकल कॉलेज एण्ड हॉस्पीटल से लेकर गोलघर तक का क्षेत्र काफी आबादीवाला था। अनेक अंग्रेजों के मकान इस क्षेत्र में थे। बुकानन द्वारा चित्रित पटना के नक्शे में आधुनिक गाँधी मैदान की चर्चा नहीं है। आधुनिक बाकरगंज मुहल्ले की चर्चा बुकानन ने की है। बाकरगंज के पूरब में स्थित मुहल्लों का नाम मुहर्रमपुर, मुरादपुर, अफजलपुर और महेन्द्रू बताया गया है। बुकानन के समय बाकरगंज के दक्षिण अर्थात् आधुनिक कदमकुआँ और राजेन्द्रनगर में आबादी बिल्कुल नगण्य थी।

बुकानन ने सलेमपुर, लंगरटोली, काजीपुर, भिखनापहाड़ी और मुसल्लहपुर की चर्चा की है और लोहानीपुर को उसने दक्षिणी पटना का

अंतिम भाग बतलाया है ।[1]

महेन्द्र मुहल्ला के उत्तर एवं दक्षिण का हिस्सा घनी आबादीवाला था। यहाँ खाली जमीन नहीं मिलती थी। मकान की कीमतें भी काफी ऊँची थीं।

अफीम[1]-वितरक सर चार्ल्स द वूली के आतिथ्य में बिशॉप ह्बेर नामक एक अंग्रेज यात्री 1824 ई० में पटना आया था और उसने पटना को सुन्दर बनाने का प्रयास किया था। उसने एक **रेसकोर्स** बनवाया था, जो आज **गाँधी मैदान** के नाम से जाना जाता है। इस गांधी मैदान को मेटकॉफ नामक पटना के कमिश्नर ने बनवाया था। इसके बाद अँग्रेजों ने अपने कई प्रशासनिक कार्यालयों को गाँधी मैदान के पास स्थापित किया। आधुनिक सब्जीबाग मुहल्ले में अँग्रेज अधिकारियों के कई बंगले बने। आधुनिक बाँकीपुर मुहल्ले के पास अफीम-व्यापारियों के कई गोदाम स्थापित किये गये थे। पटना के पश्चिमी हिस्से में **आखिरी मकान** अंग्रेजों ने आधुनिक कुर्जी हॉस्पिटल के पास बनवाया था। बाँकीपुर में जज-कोर्ट का पुराना भवन पहले **शोरा का गोदाम** था।

बिहार के प्रमुख जमींदारों ने पटना में अपने भवन बनवाये। दरभंगा महाराज ने अपनी कोठी बनवायी। गंगा नदी के किनारे सुल्तानगंज के पास बेतिया-राज का भवन बना। महाराजा महीपत नारायण सिंह ने यहाँ **शिव का मंदिर** बनवाया। टेकारी के जमींदार ने भी अपना मकान बनवाया, जहाँ 1835 ई० में **पटना हाई स्कूल** स्थापित किया गया।[2]

1857 ई० में **न्यायालय** और **कलक्टर का ऑफिस** गंगा नदी के किनारे वहाँ स्थापित हुआ, जहाँ आज भी है। ऐसा इसलिए हुआ कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने कई व्यापारिक कार्यों को करना छोड़ दिया था, जिसके कारण कई भवन खाली हो चुके थे और इस कम्पनी ने प्रशासनिक कार्यों को खुद सम्हालना शुरू कर दिया था। लार्ड डलहौजी ने पटना में **लोक-निर्माण-कार्य विभाग एवं रेल-व्यवस्था** को स्थापित किया।

---

1. सुरेन्द्र गोपाल, **पटना इन द नाइनटीन्थ सेंचुरी**, पृ० 4 से उद्धृत।
1. अफीम चार आना प्रति तोला खुदरा बेचा जाता था।
2. सुरेन्द्र गोपाल, **वही**

मीठापुर में एक जेल बना, जो पहले अफीम के कारखाने से सटा था। गाँधी मैदान के उत्तरी हिस्से में एक चर्च की स्थापना 1857 ई० में हुई और अंग्रेजों की संख्या में भी वृद्धि हुई। 1833 ई० में एक भूकम्प आया और उसके भवन ध्वस्त हो गये। 1854 ई० में यहाँ बिजली तार एवं डाक विभाग खुला।

1857 ई० के विद्रोह के वातावरण में भी पटना का विकास जारी रहा, क्योंकि कोई खतरनाक घटना यहाँ नहीं घटी थी। 1857 ई० के गर्म वातावरण में पटने के दीवान मौलाना बख्श, महाराजा भूप सिंह, विलायत अली खाँ, शेख रजा हुसेन, अल्ताफ हुसेन, राय अलूरी कीशन, बाबू चुन्नी लाल आदि ने आधुनिक बिहार के इतिहास में अच्छा नाम कमाया।

रेलवे लाइन बनने के पश्चात् 1860 ई० से ही पटना का सीमा-विस्तार रुक गया, क्योंकि पटना के रेलवे लाइन ने एक सीमा-रेखा के रूप में दक्षिणी पटना के विस्तार को रोक दिया। कुम्हारार आदि स्थान पुनः विकसित हो ही नहीं सके।

मुजफ्फरपुर के उपायुक्त के अनुसार 1865 ई० में पटना नौ मील की लम्बाई में बसा हुआ था। शहर में काफी धूल रहा करती थी। यहाँ के बाजारों में घी और तेल बिकता था। इसी समय प्रशासन में अनेक विभागों की व्यवस्था की गई। सभी उच्चाधिकारियों, जो अंग्रेज थे, ने अपना निवास-स्थान गोलघर के पास स्थापित किया। इस पूरे इलाके को तब **'यूरोपियन पोर्शन'** कहा जाता था। नौकरशाही में भी विस्तार हुआ। रेलवे ने यात्रा को आसान कर दिया। चूँकि पटना छह जिलों का मुख्य प्रशासनिक केन्द्र था, अतः दूर-दूर के इलाकों से लोग प्रशासनिक कार्यों के लिये आने लगे। पटना बिहार में पश्चिमी शिक्षा-पद्धति का सबसे बड़ा केन्द्र इसी समय हो गया, अतः बाहर के धनी छात्रों की संख्या यहाँ बढ़ी। अधिकांश छात्र हिन्दू और मुस्लिम जमींदार-परिवारों से आते थे। आबादी बढ़ने से कई नये मकान भी बनने लगे।

सरकारी नौकरों एवं अनेक पैसेवालों ने आधुनिक **नया टोला** में मकान बनवाया। 1881 ई० में पी० सी० राय, जो प्रांतीय लोकसेवा के सदस्य थे, ने नया टोला में अपना मकान बनवाया। प्रसिद्ध होमियोपैथ डॉ० परेशनाथ चटर्जी ने भी अपना घर इसी मुहल्ले में बनवाया। प्रसिद्ध

अधिवक्ता गुरुप्रसाद सेन, जो पत्रकार और सामाजिक कार्यकर्त्ता भी थे, ने अपना घर पी० एन० ऐंग्लो संस्कृत स्कूल के सामने बनवाया। आज कल इस मकान में भूतपूर्व न्यायाधीश कुलवन्त सहाय का परिवार रहता है।[1]

सरकारी कामों से निबटने के लिए अनेक जमींदारों ने पटना में अपना एक-एक मकान रखना आवश्यक समझा, क्योंकि उन्हें हमेशा पटना आना पड़ता था। इसके अलावे बच्चों को भी वे पटना में पढ़ाना चाहते थे। दरभंगा महाराज ने भी पटना में कई मकान बनवाये। 1894 ई० में **श्रीमती एनी बेसेंट** पटना आयीं।

प्रसिद्ध वकीलों ने भी पटना में घर बनाना शुरू कर दिया। इन-लोगों ने अधिकांश मकान मुरादपुर और चौहट्टा में बनवाये। अधिकांश प्रसिद्ध वकील बंगाली थे, अतः अनेक सड़कों का नाम बंगालियों के नाम पर ही पड़ा; जैसे **ब्रजेन्द्र मोहन दास रोड** (बी० एम० दास रोड, पटना कॉलेज के सामने), **खजान्ची रोड** (यह नाम करुणामय गुप्ता, जो बंगाल बैंक में खजान्ची थे, के नाम पर पड़ा।) बिहारीलाल भट्टाचार्या या भट्टाचार्यी रोड (यह रोड मखनियाँ कुआँ भी कहलाता है।), सरोदा प्रसाद घोष लेन, गोविन्द मित्र रोड आदि।

वर्तमान मछुआटोली से बाकरगंज होते हुए गाँधी मैदान तक का रोड **'बारी पथ'** कहलाता है। इस क्षेत्र में भी आवासीय मकान अच्छी संख्या में बने! इसी समय एक पुजारी ने **'भीखनदास की ठाकुरवाड़ी'** नामक एक मंदिर बनवाया। इसी मंदिर के उत्तर में ब्रह्मसमाज का मंदिर बना। उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक में एक सिन्धी भक्त ने ब्रह्मसमाज के इस मंदिर में एक बड़ा हाल बनवा दिया। इसी के पास 1871 ई० में एक मस्जिद भी बनी। 1910 ई० में **'लंगरटोली मुहल्ले'** की स्थापना हुई। सबसे पुराने मकानों में एक मकान प्रोफेसर विमलबिहारी मजुमदार का भी है, जिनके सुपुत्र प्रसिद्ध इतिहासकार प्रोफेसर भक्त प्रसाद मजुमदार हैं। 1862 ई० के बाद पटना से दीघा और गया के लिए रेलसेवा आरम्भ हुई। 1909 ई० में फ्रेजर रोड होते हुए पटना रेलवे स्टेशन से गाँधी मैदान तक के सभी रोड काफी व्यस्त होते गये। तब अनेक मकान रोड के दोनों तरफ बन गये।

---

1. सुरेन्द्र गोपाल, वही पृ० 10

अशोक राजपथ (पटना मार्केट के सामने) पर 1885 ई० में **अंजुमन इस्लामिया हॉल**' बना, जिसमें सभा, सांस्कृतिक कार्यक्रम वगैरह होता था। इसी भवन के पश्चिम और सब्जीबाग के सामने बाँकीपुर पोस्ट-ऑफिस बना। पटना का मुख्य डाकघर पहले भीखना पहाड़ी, पटना, 5 में स्थित था। लगभग 80 बच्चों के लिए एक अनाथालय भी यहाँ 1866 ई० में बना। स्थानीय जनता और स्थानीय प्रशासन के सहयोग से 1864 ई० में **पटना म्युनिसपैलिटी** की स्थापना हुई। 1867 ई० में पटना म्युनिसपैलिटी द्वारा मंगल तालाब बनवाया गया। वैसे पटना के कलक्टर मिस्टर मैंगल के नाम पर इस तालाब का नाम मैंगल तालाब पड़ा था। यहाँ 1869 ई० में बैलगाड़ी के लिये पड़ाव और कुआं म्युनिसपैलिटी ने बनवाया।

सरकार ने 1863 ई० में पटना कॉलेज खोला। इसके बाद विशेश्वर प्रसाद सिंह ने 1889 ई० में बी० एन० कॉलेज खोला। वे आरा जिला स्थित कुल्हड़िया स्टेट के जमींदार थे। विशेश्वर बाबू के भाई शालिग्राम सिंह एक वकील थे। कॉलेज में छात्रों की संख्या बढ़े, इसके लिये कई स्कूल खोले गये। 1882 ई० में टी० के० घोष एकेडमी, 1883 में बी० एन० कॉलेजिएट स्कूल, 1895 ई० में पी० एन० ऐंग्लो संस्कृत स्कूल और 1897 ई० में राममोहन राय सेमिनरी स्कूल खुला। कुछ खास मुसलमानों ने पटना सिटी में 1884 ई० में मुहम्मडन ऐंग्लो अरबिक स्कूल खोला। दानापुर (दीनापुर) में भी इसी समय बलदेव हाई स्कूल खोला गया।

पश्चिमी शिक्षा के आधार पर स्त्रियों को भी शिक्षित करने का प्रयास किया गया। सर्वप्रथम 1853 ई० में ईसाइयों ने लड़कियों का एक स्कूल खोला। बंगालियों ने भी पटना में स्त्री-शिक्षा पर जोर दिया और 1867 ई० में कुछ प्रमुख बंगालियों ने एक कन्या विद्यालय खोला। 1868 में मुहम्मद अजीज खान नामक एक भद्र पुरुष ने लड़कियों का एक स्कूल खोला, जिसपर एक पुरातन-पंथी मुसलमान भद्र पुरुष का कहना था कि "यह लड़कियों का स्कूल क्या खुला, जमाना ही बदल गया अब!" पर कुछ महीनों के बाद ही इनमें से अधिकांश स्कूल छात्राओं के अभाव में बन्द हो गये। लेकिन इसी के साथ-साथ ठोस योग्यता के आधार पर नये गर्ल्स-स्कूल खोले भी जाने लगे। डॉ० विधानचन्द्र राय (भूतपूर्व मुख्यमंत्री, पश्चिम बंगाल) की माँ कामिनी देवी ने 1892 ई० में बाँकीपुर गर्ल्स स्कूल

की स्थापना की। इसके बाद और भी गर्ल्स-स्कूल वहाँ खोले गये, जहाँ की आबादी अधिक घना थी।

राममोहन राय सेमिनरी स्कूल का भवन पहले पटना मेडिकल कॉलेज एण्ड हॉस्पीटल के दायरे में वहाँ था, जहाँ अब पथियाट्रिक वार्ड है। जब अस्पताल का प्रसार होने लगा, तो यातायात को ध्यान में रखते हुए इसे खजांची रोड में लाया गया।

मेन रोड पर खुदाबख्श ओरियन्टल लाईब्रेरी 1891 ई० में खुला जिसका श्रेय छपरा जिला में जन्मे प्रसिद्ध जमीदार खुदाबख्श साहब को है। 1200 पाण्डुलिपियों को इकट्ठा कर 80,000 की लागत से इस लाइब्रेरी का भवन बना। सैयद अब्दुल मजीद, नवाब विलायत अली खान और सैयद रुकमर नवाब ने भी अपनी बहुमूल्य किताबों को इसे दान में दिया।

त्रिपोलिया अस्पताल 1893-95 ई० में बना और महेन्द्रू मुहल्ला (पटना-800006) में नये लोगों ने बसना शुरू किया। पटना में उस समय टमटम चलता था। फिर सर्वप्रथम बग्घी का प्रयोग उल्फत हुसैन फरियाद ने किया।[1] पटना के कमिश्नर मेट्कॉफ ने इसे इंगलैंड से लाकर फरियाद साहब को भेंट किया था। चार घोड़ों से चलनेवाले बग्घी का प्रयोग बाद का कमिश्नर टेलर भी करता था। यों पालकी भी यातायात का साधन थी। प्रायः धनी पुरुष हाथी पर बैठ कर जाते थे।

1872 ई० में जनगणना के अनुसार यहाँ सबसे अधिक हिन्दुओं की संख्या थी। बुकानन के अनुसार पटना में 95,500 मुसलमान रहते थे। ईसाइयों की संख्या लगभग 500 और 2,14,500 हिन्दू थे। अनेक बार सूखा, बाढ़ और महामारी के कारण 1860 ई० से 1874 ई० के बीच पटना की आबादी घटी। इसके बावजूद बाहरी व्यापारियों और यात्रियों का पटना में आना जारी रहा। यूरोपियन लोगों की संख्या कम थी, लेकिन ये लोग काफी प्रभावशाली थे। सिक्खों और जैनियों की संख्या भी अच्छी खासी थी। इस समय ब्राह्मण और राजपूत ऊंची जाति के माने जाते थे, इसके बाद कायस्थ, बाभन, भट्ट आदि थे। व्यापारिक जातियों में अग्रहरी, बनिया, केसरवानी, खत्री, रौनियार आदि थे। कृषि से सम्बंधित जातियों में हन्टर ने बढ़ई, तमोली, कोइरी, कुरमी, माली को बताया है।

---

1 सुरेन्द्र गोपाल, वही, पृ 17

शिल्पकारों में बढ़ई, कसेरा, ठठेरा, कुम्हार, लोहार, सोनार, तेली आदि थे।

प्रशासनिक सेवा में नौकरी पाने के लिए अनेक लोगों ने फारसी और अरबी भाषा को सीखना शुरू किया, जिसके कारण पटना में आबादी बढ़ी। उन्नीसवीं सदी के प्रथम चरण में पटना पर अवध का प्रशासनिक नियंत्रण था अतः अनेक अधिकारियों का आगमन अवध से पटना में हुआ। अवध के नवाब वजीर अली की पत्नी इब्राही खातून को पटना में बसने के लिए 1807 ई० में बाध्य किया गया और वजीर अली को गिरफ्तार कर लिया गया। वजीर अली के मरने के बाद उसकी दूसरी पत्नी हुसैनी बेगम भी अपने दो बेटों के साथ पटना आकर बस गयी। अवध के नवाब सादत अली से हारकर शुजाउद्दौला के दो बेटे शहमत अली (या मिर्जा जुंगली) और मिर्जा मेंदू अपने दो सौ आदमियों के साथ पटना आकर 1807 ई० में बस गये। इसी समय आसफउद्दौला का प्रमुख दरबारी झाओलाल को भी लखनऊ छोड़ देने को बाध्य किया गया और वह भी पटना में आकर बस गया। पटनासिटी में स्थित झाऊगंज मुहल्ले का नाम इसी झाओलाल के नाम पर पड़ा। उसने बाजार और अपने आवास के लिए एक बड़ा भवन यहाँ बनवाया। वह सक्सेना कायस्थ था, जिसने नजीबुन्नीसा बेगम नामक एक मुस्लिम औरत से संभवतः शादी की थी। यह एक विधवा थी, जिसे 1000 रुपया पेंशन मिलता था।[1]

पटना में लखनऊ के मुसलमानों एवं हिन्दुओं के आने से पटना के रहन-सहन एवं पोशाक में बदलाव आया! इसके कारण उर्दू भाषा, शायरी, संगीत आदि के प्रति पटना के मुसलमानों का आकर्षण भी बढ़ा। 1813 में पटना के मशहूर गायक रजाशाह ने भारतीय राग-रागिनियों का पुनः विभाजन किया और एक नया यंत्र-संगीत चलाया जिसे ठाट कहते हैं। उन्होंने गाने-बजाने के बारे में नगमत असफी नामक एक किताब की रचना की।[2]

अंग्रेजों के कारण पटने की आर्थिक स्थिति खराब होती गई। पहले यहाँ का बाजार सूती वस्त्र के लिए प्रसिद्ध था, लेकिन विदेशी वस्त्रों की जैसे-जैसे खपत बढ़ती चली गई और यहाँ के जुलाहों को दबाया गया,

1 उन्नीसवीं शताब्दी में पटना के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी के लिए देखें, सुरेन्द्र गोपाल, वही

2 डा० कालिंकिकर दत्त, बिहारबासियों का जीवन और उनकी चिन्तन धारा पटना, 1970 है २६

इसका सूती वस्त्र-उद्योग पिछड़ता गया। यही हाल अन्य उद्योग-धंधों का भी हुआ।

19 वीं शताब्दी में गोपाल भट्ट गौड़ीय समुदाय के छः गोस्वामियों में के एक थे। उन्होंने वृन्दावन में राधारमण जी की मूर्त्ति की स्थापना की। राधारमण जी के सेवकों या पुजारियों के एक वंशधर वृन्दावन से पटना चले आये थे। उन्होंने पटना के गायघाट पर चैतन्यदेव की एक मूर्त्ति स्थापित की। धीरे-धीरे इस वंश के लोगों को यश तथा धन बहुत मिला और पटना में इन्हें काफी जायदाद प्राप्त हुई और शिष्यों की संख्या में वृद्धि हुई। पटना के गायघाट के अखाड़े में झूलन, रथयात्रा तथा होली आदि वैष्णव पर्व बड़ी धूमधाम से मनाये जाते। इस अखाड़े में एक अच्छा पुस्तकालय है जिसमें अमूल्य हस्तलिखित पोथियां थीं।[1]

राजनीतिक स्थिति कमजोर होने से मुगलों ने कला-विद्या को प्रोत्साहित करने की स्थिति में नहीं रहे। बहुत-से योग्य एव कुशल शिल्पी देहली छोड़ अन्य राज्यों में बस गये। पटना आने वाले चित्रकारों ने एक नवीन चित्रकला का विकास किया जिसे **पटना चित्रकारी** कहते हैं। इसका सर्वोत्तम विकास 1850 तथा 1880 के बीच हुआ। तत्कालीन चित्रों के कुछ नमूनें पटना संग्रहालय तथा पटना राजकीय शिल्पकला विद्यालय में आज भी देखे जा सकते हैं। इन चित्रों को देख तत्कालीन समाजिक घटनाओं को समझा जा सकता है।[2]

पत्र-पत्रिकाएं :

बिहार बन्धु नामक समाचार 1874 से पटना में छपना शुरू हुआ। हसन अली नामक एक स्कूल मास्टर ने 1878-79 में **मोतीचुर** नामक मासिक पत्रिका निकालना शुरू किया। पटना नॉर्मल स्कूल में हसन अली मास्टर थे। इसी स्कूल के हेडमास्टर श्री सोहनलाल ने 1879 में **हिन्दी गजट** प्रकाशित करना शुरू किया। पटना कॉलेजियट स्कूल के एक शिक्षक पंडित बद्रीनाथ ने 1880 में **विद्याविनोद** नामक एक मासिक पत्रिका निकाली। इसी वर्ष **धर्मनीतितत्व** नामक एक मासिक पत्रिका पटना से प्रकाशित होने लगी।

---

1. डा० कालिंकिकर दत्त, विहारवासियों का जीवन और उनकी चिन्तन-धारा पटना, 1970, पृ० 16-17
2. वही पृ० 18-19

भूदेव मुखोपाध्याय (तत्कालीन डिप्टी इन्सपेक्टर ऑफ स्कूल्स) ने 1875-76 में **ब्रांच बौधायन प्रेस** की स्थापना बाँकीपुर, पटना में की। भूदेव मुखोपाध्याय के इस कार्य से प्रभावित होकर बाबू रामदीन सिंह ने पटना में एक **हिन्दी प्रेस** की स्थापना की। 1881 में बाबू रामदीन सिंह ने यहाँ से **क्षत्रिय पत्रिका** प्रकाशित करना शुरू किया। इस मासिक पत्रिका के लिए उदयपुर के महाराज ने तीन हजार रुपये दान दिये। 1883 में **भाषा-प्रकाश**, 1887 में **हरिचन्द्र कला**, 1890 में **द्विजी पत्रिका**, 1897 में (1) **समस्यापूर्त्ति** तथा (2) **शिक्षा**, 1890 में **सर्व हितैषी**, 1901 में **भारत रत्न**, 1912 में (1) **क्षत्रिय समाचार** (2) **हिन्दी बिहारी** आदि पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन पटना से होने लगा।

पटना हरकारा नामक उर्दू पत्रिका पटना में 21 अप्रैल, 1835 से छपनी शुरू हुई। इसी वर्ष **अलपंच** नामक उर्दू समाचार पत्र सदरगली, पटना से निकलना शुरू हुआ। 1874 में प्रथम अंग्रेजी पत्रिका छपी जिसका नाम **बिहार हेराल्ड** था। इसके सम्पादक गुरु प्रसाद सेन (अधिवक्ता) थे।[1]

पटना कॉलेज

सरकार ने 1863 ई० में **पटना कॉलेज** खोला। बी० ए० की पढ़ाई यहाँ 1865-66 से शुरू हुई। 1867 ई० में बिहारी छात्रों की संख्या मात्र 40 थी। 1868 से बी० ए० की परीक्षा पटना में आयोजित होने लगी। एम० ए० में नामांकन कराने वाले प्रथम बिहारी छात्र के० सी० बंद्योपाध्याय थे।

पटना कॉलेज का **बी० ए० लेक्चर थियेटर** हॉल 1887 में तैयार हुआ। 1901 में विधानचन्द्र राय (बंगाल के भूतपूर्व मुख्यमंत्री) ने पटना कालेज से गणित (प्रतिष्ठा) में बी० ए० पास किया। "आधुनिक बिहार के निर्माता" के रूप में अपनी पहचान बनाने वाले सच्चिदानन्द सिन्हा का पटना कॉलेज में नामांकन 1888 ई० में हुआ था। गणेशदत्त सिंह ने 1893 में आई० ए० और 1895 में बी० ए० पास किया। हाई कोर्ट के भूतपूर्व जज और पटना विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति ख्वाजा मोहम्मद नूर का 1895 में नामांकन इस कॉलेज में हुआ।

---

1 विस्तृत जानकारी के लिए देखें, विष्णु अनुग्रह नारायण, "अर्ली हिस्ट्री ऑफ हिन्दी जर्नलिज्म इन पटना (1872-1912)," पटना थ्रू द एजेज, पटना, 1988, पृ० 88-95।

बिहार में पहली बार एक **कॉमन रूम** 1905 में इसी कॉलेज में बना। **ड्रामा सोसायटी ऑर्केलॉजिकल सोसायटी**, और **ओल्ड ब्वॉयज एसोसियेशन** का गठन 1907 में इस कॉलेज में हुआ। 1909 में **मिंटो हिन्दू हॉस्टल** और **मिंटू माहम्मडन हॉस्टल** (आज का जैक्सन हॉस्टल) बना। 1917 ई० में **पटना विश्वविद्यालय, बड़ा अस्पताल** और **हाईकोर्ट** बने। पटना विश्वविद्यालय का कार्यालय भवन मगध महिला कॉलेज के आधुनिक इलाहाबाद बैंक वाले भवन में स्थित था। 1927 के आसपास यह ह्विलर सिनेट हॉल में आया।

1923 में पटना इतिहास विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर यदुनाथ सरकार थे जिन्होंने **औरंगजेब** और **शिवाजी** पर प्रसिद्ध पुस्तकें लिखीं। इस विभाग के प्रोफेसर यदुनाथ सरकार, प्रोफेसर एस० सी० सरकार, प्रोफेसर के० के० दत्त, प्रोफेसर योगीन्द्र नाथ समाद्दार (45 वर्ष की आयु में मृत्यु) प्रोफेसर सैयद हसन अस्करी, प्रोफेसर जगदीश नारायण सरकार, प्रोफेसर राम शरण शर्मा एवं प्रोफेसर पी० पी० मजुमदार राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त इतिहासकार रहे हैं।[1]

●

---

1 विस्तृत जानकारी के लिए देखें, जे० सी० झा, "आस्पेक्ट्स ऑफ हिस्ट्री ऑफ पटना कॉलेज," पटना थ्रू द एजेज, पृ० 96-119

अध्याय—6

19वीं शताब्दी में पटना का भूगोल

19वीं सदी में एक स्रोत के अनुसार पटना जिला दक्षिण बिहार में गंगा के किनारे 24 डिग्री 58 फीट और 35 डिग्री 44 फीट उत्तरीय अक्षांश तथा 84 डिग्री 42 फीट और 86 डिग्री 2 फीट पूर्वीय देशान्तर के बीच स्थित था। इसका मुख्य शहर पटना बिहार प्रान्त की राजधानी थी, जो 25 डिग्री 37 फीट उत्तरीय अक्षांश और 85 डिग्री 10 फीट पूर्वीय देशान्तर पर स्थित थी।

पूरब से पश्चिम तक पटना जिले की लम्बाई 82 मील और उत्तर से दक्षिण तक चौड़ाई 28 से 42 मील तक थी। यह प्रान्त का सबसे छोटा जिला था। सारण को छोड़कर बिहार के प्रायः सभी जिले इससे डेड़-गुना या उससे भी अधिक बड़े थे। प्रान्त के सबसे बड़े जिले राँची और हजारीबाग इससे लगभग साढ़े तीन गुना बड़े थे, यद्यपि वे भी इधर और कई जिलों में बाँट दिये गये थे।

दक्षिण-पूरब दिशा की ओर के कुछ पहाड़ और जंगल को छोड़कर बाकी सारा पटना जिला समतल भूमि पर था, जो उत्तर की ओर ढालू होता चला गया था। गंगा के किनारे-किनारे करीब चार मील तक जमीन कुछ ऊँची थी, जिससे दक्षिण-पश्चिम की ओर से आती हुई नदियाँ सीधे गंगा में नहीं मिलकर पूरब की ओर बह गयी थीं। नदियों की इस रुकावट के कारण पटना सिटी, बाढ़ और मोकामा के दक्षिण की नीची जमीन बरसात में प्रायः पानी से भरी रहती थी। लोग एक जगह से दूसरी जगह नावों पर ही जाते थे। इस नीची जमीन में पेड़ भी नहीं लग पाते थे। बहुत दूर तक सिर्फ मैदान-ही-मैदान नजर आते थे। गर्मी के दिनों में लोगों को इधर आवागमन में बहुत कष्ट होता था। पर जिले के और भागों में बहुत-से हरे-भरे वृक्ष और हरियाली हमेशा छायी रहती थी।

दक्षिण-पूरब दिशा में राजगीर पहाड़ 30 मील तक इस जिले को गया जिले से अलग करता था। (वैसे अब यह नालन्दा जिले में पड़ता

है।) इसकी सबसे ऊंची चोटी हंडिया पहाड़ी थी, जो 1,472 फीट ऊंची थी। अन्य चोटियां एक हजार फीट या उससे भी कम ऊंचाई की थीं। इसकी चोटियों में रतनगिरि, विपुलगिरि, उदयगिरि, सोनगिरि और वैभारगिरि मुख्य थीं। यहां की आबोहवा बहुत ही अच्छी थी। इन पहाड़ों के आस-पास कुछ जंगल भी थे। बिहारशरीफ, जो अब नालन्दा जिले का मुख्यालय था, में भी एक छोटी पहाड़ी थी, जो 'पीर पहाड़ी' या 'बड़ी पहाड़ी, कहलाती थी।

पटना जिले में गंगा और सोन, ये दो मुख्य नदियां थीं। इनमें गंगा नदी जिले की उत्तरी सीमा बनाती तो सोन पश्चिमी सीमा। इसके अलावें छोटी-छोटी भी कई नदियां थीं; जो उत्तर-पूरब की ओर बहती हुई गंगा में आकर मिलती थीं। इन नदियों से बहुत-सी नहरें निकाली गयी हैं। इस कारण साल में ज्यादा समय तक ये नदियां प्रायः सूखी ही रहती थीं। केवल पुनपुन, मोरहर और पंचाने, इन तीन नदियों में ही कुछ पानी रहा करता था।

जहां सोन नदी गंगा नदी में मिलती वहां से लेकर 93 मील तक गंगा नदी इस जिले की उत्तरी सीमा बनाती हुई बहती चली गयी थी। जाड़े के दिनों में पटना के पास इसकी चौड़ाई करीब 600 गज रहती थी। सोन नदी हरदी-छपरा के पास गंगा नदी में मिली थी। वहां से सोन की एक धारा फूटकर दीघा चली आई और वहीं गंगा नदी में मिली थी। इस धारा से एक नहर भी निकाली गयी। इससे अब दीघा व्यापार का केन्द्र हो गया। कम्पनी के बड़े-बड़े स्टीमर यहां से बक्सर तक और घाघरा नदी में बरहन तक जाते थे। पटना के पास ही उत्तर से आकर गंडक नदी गंगा में मिलती थी। पुनपुन नदी फतुहा में गंगा नदी से मिलती थी पर जिले की और सारी नदियां जिले से बाहर जाने पर गंगा से मिलती थीं।

सोन नदी पटना और शाहाबाद जिले के बीच सीमा का काम करती। सोन-गंगा संगम से कई मील दक्षिण सोन नदी पर ईस्ट इण्डियन रेलवे का एक बहुत बड़ा पुल भी था। यह नदी पहाड़ी भागों से बहकर आयी थी। बरसात के दिनों में इसमें एका एक भयानक बाढ़ आ जाती थी; पर यह बाढ़ थोड़े ही दिनों तक रहती थी। इस नदी का बालू सोने-सा चमकता था; इसी कारण इसका नाम सोन पड़ा। यह शोणभद्र भी कही जाती थी और पहले इसका नाम हिरण्यबाहु था, जिसका अर्थ है

छोटे-की-सी बाँहवाली। पहले यह नदी अपने स्थान से बहुत हटकर पूरब की ओर बहती थी और फतुहा के पास गंगा नदी में आकर मिलती थी।

पुनपुन नदी शाहजादपुर के पास जिले में प्रवेश कर 44 मील तक बहती हुई फतुहा में गंगा नदी से मिलती थी। इसके गंगा नदी में मिलने के 9 मील पहले ही मोरहर और दरधा नदियां इसमें आकर मिल जाती थीं। पुनपुन में सालोंभर पानी रहता, लेकिन इतना नहीं कि नावें सब दिन चल सकें। इसका बहुत-सा पानी नहरों के काम में आता था। पुनपुन नदी को हिन्दू लोग बहुत पवित्र दृष्टि से देखते थे। गया जानेवाले हिन्दू यात्री अपना सिर मुड़ाना, स्नान करना और पितृ-ऋण तर्पण करना, अपना धर्म समझते थे।

पुनपुन नदी से पूरब **मोरहर** और **दरधा** नाम की दो नदियां बहतीं। ये दोनों नदियां करीब एक ही जगह जाकर पुनपुन नदी में मिलती थीं। दरअसल ये दोनों एक ही नदी की दो शाखाएँ थीं, जो गया जिले में फूटी थीं। साल में ज्यादा वक्त तक ये नदियां सूखी ही रहतीं क्योंकि इनसे खेत की सिंचाई का अच्छा-खासा काम लिया जाता था।

फल्गु नदी थोड़ी ही दूर तक तक इस जिले में बहने के बाद तेल्हाड़ा के पास दो शाखाओं में बँट जाती थी। एक का नाम 'सोन' नदी और दूसरे का नाम 'कान्तार' नदी हो जाता था। ये दोनों आगे चलकर मैंथुन नदी में मिल जातीं।

मैंथुन नदी ढोआ और सोन नदी के मिलने से बनी थी। यह करीब समूचे बाढ़ सब-डिवीजन में गंगा के समानान्तर बहती थी। रास्ते में यमुना नदी और धनियैन नदी के भी मिलने पर इसका नाम 'कुलुहर' हो जाता।

पाँच धाराओं से बनने के कारण इस नदी का नाम **'पंचाने'** या **'पंचाना'** पड़ा। ये पाँचों धारायें गया जिले से आकर बिहार सब-डिवीजन में गिरियक के पास मिली थीं। बिहार शहर इसी के किनारे बसा। यह नदी बहुत पतली धारा में बहती हुई अन्त में सकरी नदी से मिल गयी।

सकरी पटना जिले के पूर्वी हिस्से में निरंतर बहती हुई मुंगेर जिले में प्रवेश कर गयी। पंचाने की तरह यह भी एक बहुत छोटी नदी थी। सिंचाई के काम के लिए इससे दो नहरें निकाली गयीं जिसके कारण इसमें पानी बहुत कम रह जाता था।

पटना जिले की जलवायु साधारणतः अच्छी थी। यहाँ पूस-माघ में जाड़ा और जेठ-वैशाख में गरमी काफी पड़ती थी। जाड़े के दिनों में गरमी औसतन 40 डिग्री तक रहती और गरमी के दिनों में वही बढ़कर 110 डिग्री से 114 डिग्री तक हो जाती थी। मुख्य हवाएँ पूर्वी और पश्चिमी थीं। पूर्वी हवा आर्द्र और पश्चिमी शुष्क होती। पुस से जेठ तक प्रायः पश्चिमी हवा और उसके बाद साधारण तौर पर पूर्वी हवा चलती रहती थी। आषाढ़ से वर्षा थोड़ी-बहुत शुरू हो जाती और सावन-भादो में तो प्रायः खूब होती थी। पूरे साल में करीब चालीस-पैंतालीस इंच तक वर्षा होती थी।

जिले की आम बीमारियाँ बुखार, हैजा, प्लेग, चेचक आदि थीं। कुछ वर्षों पहले यहाँ प्लेग खूब जोरों से फैला करता और हजारों आदमी इससे मरते थे। चेचक से बचने के लिए सरकार ने आम लोगों को टीका दिलवाने का प्रबन्ध कर रखा था।

हर तरह के रोगियों के इलाज के लिए सरकारी प्रबन्ध से जगह-जगह अस्पताल खुले। पटना शहर के अन्दर पटना सिटी, गुलजारबाग, बाँकीपुर, गर्दनीबाग और दानापुर में सरकारी अस्पताल थे। बाँकीपुर का अस्पताल तो प्रान्त भर का सबसे बड़ा अस्पताल था। सरकारी प्रबन्ध में अब यहाँ एक आयुर्वेदिक महाविद्यालय औषधालय भी खुला है। इनके अलावे मुफस्सिल जगहों में भी जहाँ-तहाँ अस्पताल हैं। सन् 1935-36 ई० में जिले के अन्दर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के 32 अस्पताल थे। पटना (अब नालन्दा) जिले में सबसे अच्छा स्वास्थ्यप्रद स्थान राजगीर है। लोग स्वास्थ्य-सुधार के लिए यहाँ दूर-दूर से आकर रहा करते हैं।

जिले के पालतू जानवरों में गाय, भैंस, घोड़ा, बकरी, भेड़, गधा, सुअर, कुत्ता आदि प्रमुख थे। हाथी और ऊंट भी जहाँ तहाँ पाये जाते थे। इन सबमें गाय और बैल सबसे उपयोगी जन्तु थे। यहाँ साधारण देशी गायों के अलावे दो जाति की गायें और भी तैयार की गयी थीं। एक तो हाँसी के साँढ़ के संयोग से और दूसरी अँग्रेजी साँढ़ के संयोग से। हाँसी जाति के गाय-बैल बहुत बड़े होते थे। इससे ये बैलगाड़ी और हल में जोतने के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होते थे; पर गायें अधिक दूध देनेवाली नहीं होती थीं। दूसरी जाति के गाय-बैल बहुत बड़े नहीं होते, पर गायें बड़ी दुधारू होती थीं। करीब 70-80 वर्ष पहले कमिश्नर टेलर ने पटना के लोहानीपुर मुहल्ले में एक पशुशाला खोली थी और इस जाति की कई गायें

तैयार करायी थीं। पीछे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ने आस्ट्रेलियन और मॉण्टगुमरी साँढ़ भी मँगाये थे, जिससे नयी जाति के गाय-बैलों का ह्रास नहीं होने पावे। देशी गायों से नयी जाति की गाय दूध तो अधिक देतीं सही, लेकिन इनका दूध मीठा नहीं होता था। हल में प्रायः बैल जोते जाते थे, पर धान के खेतों में गहरा पाँक तैयार करने के लिए भैंसे भी जोते जाते थे। कभी-कभी गाड़ी में भी भैंसे जोते जाते थे। यहाँ भेंड़ें जिले के पश्चिमी भाग में पायी जाती हैं। बकरियाँ प्रायः सभी गाँवों में पाली जातीं। डोम, दुसाध वगैरह माँस खाने के लिए सुअर पालते थे। देहातों में छोटे-छोटे घोड़े (टट्टू) जुताई के काम में आते थे, लेकिन पटना शहर में टमटम वगैरह में जुतनेवाले घोड़े बहुत बड़े होते थे। जिले में जानवरों के लिए चारे का बहुत अच्छा प्रबन्ध नहीं था। जानवरों की खरीद-बिक्री के लिए बिहटा में फागुन और वैशाख में मेला लगता था। विक्रम थाने के 'ऐन खाँ' बाजार में भी इस तरह का मेला लगा करता था। बाँकीपुर और दानापुर में जानवरों का अस्पताल है। बाढ़ और बिहार में भी जानवरों के इलाज का प्रबन्ध किया गया है। कुछ डॉक्टर देहातों में घूम-घूमकर भी इलाज किया करते।

अध्याय—7

आधुनिक चित्रकला

'पटना के एक मुशायरे में लखनऊ के किसी शायर का यह कथन कि

सुना है कि पटने में उल्लू के पठ्ठे
रगे-गुल से बुलबुल का पर बांधते हैं।

कांगड़ा और राजस्थान की तरह पटना भी अठारहवीं शती से लेकर बीसवीं शती के शुरू तक चित्रकला का एक केन्द्र बना रहा। उसकी अपनी एक शैली थी, एक कलम थी, जिसने कई प्रख्यात चित्रकारों के हाथों में पड़कर अनेक खूबियां प्रदर्शित कीं।

मुगल बादशाह मुहम्मदशाह रंगीला के शासनकाल में नादिरशाह का भारत पर आक्रमण हुआ। इसके बाद ही मुगल साम्राज्य का टूटना शुरू हो गया। मुगल दरबार से पोषित चित्रकार धीरे-धीरे दिल्ली त्याग कर जहाँ-तहाँ चले गए।

1750-60 के बीच मुर्शिदाबाद से चित्रकारों की एक टोली पटना आकर बस गई। इसके बाद इसकी देखा-देखी चित्रकारों के और भी कई परिवार यहाँ आकर बसे। गंगा के तट पर बसा हुआ पटना हमेशा से व्यापार का केन्द्र रहा है। चीनी, लाह, कपड़े, भूटान-नेपाल की कस्तूरी बारूद, शोरा और नील का यहाँ से निर्यात हुआ करता था। शायद यही कारण था कि मुर्शिदाबाद के उपर्युक्त चित्रकारों को इसने अपनी ओर आकर्षित किया। अंग्रेज ज्यों-ज्यों मजबूत होते गये, बिहार के लिए पटना उनका सर्वश्रेष्ठ शासन-केन्द्र बनता गया। पटना और बिहार के विभिन्न स्थानों में धीरे-धीरे अंग्रेज आ जमे, इनकी कोठियां—खासकर नील, शोरा और अफीम के व्यापार से संबंधित—बन गयीं। यहाँ के सामाजिक, पशु, पक्षी, प्राकृतिक दृश्य आदि में वे उत्तरोत्तर दिलचस्पी लेने लगे। जो स्वयं खाके खींच सकते थे, पटना के मशहूर कमिश्नर टेलर की तरह, उन्होंने स्वयं चित्र अंकित किए, बाकी ने देशी चित्रकारों से तस्वीरें बनवा-बनवाकर अपने प्रियजनों के पास विलायत भेजीं या अपने स्थानीय निवासस्थानों में

टाँगीं। इस तरह भारतीय वेशभूषा, सामाजिक जीवन, पशु-पक्षी और प्राकृतिक दृश्यों के सैकड़ों चित्र तैयार हो गये, जो आज भी विलायत की चित्रशालाओं और भारत से किसी जमाने में संबंधित अंग्रेज परिवारों के घरों में तथा इस देश ही के कतिपय चित्र संग्रहालयों में उपलब्ध हैं। पटना कलम के ऐसे सैकड़ों चित्र पटना म्यूजियम और शहर के कई प्राचीन घरानों में भी संग्रहीत हैं! इनमें से ऐसे भी चित्र हैं जो किसी भारतीय दृश्य या वस्तु के नहीं बल्कि अंग्रेज परिवारों के व्यक्तियों के हैं। वे कागज हड्डी और हाथी दांत पर बने हुए अठारहीं या उन्नीसवीं शती की उपज है।

गरज यह कि ऊपर जिन परिस्थितियों की चर्चा है, उनसे बल पाकर पटना की एक खास शैली पैदा हुई। इस काल के चित्रों में बैकग्राउन्ड, फोरग्राउण्ड और लैण्डस्केप का सर्वथा अभाव है जबकि मुगलकालीन चित्रों के ये प्राण थे। उत्तर मुगलकालीन कला पूर्णतः व्यावसायिक हो गई थी। अब तो फूलों और पत्तियों का अंकन भी बिना वृक्ष या डाली के होने लगा। खनिज, रासायनिक तथा नीले रंगों का व्यापक प्रयोग जहाँ मुगलकालीन चित्रों में होता वहाँ 19 वीं शताब्दी के चित्रकारों द्वारा विभिन्न प्रकार के पत्थर, घास, फल-फूल एवं पेड़ की छालों से रंग तैयार किये जाते। मुगलकालीन चित्रों में सोने-चाँदी के रंगों का प्रयोग होता जबकि आधुनिक पटना चित्रकला में तेज और गहरे रंग का प्रयोग किया जाने लगा। हस्तलिखित कागज पर मुगलकालीन चित्र बनाये जाते जबकि आधुनिक काल में सस्ते विदेशी कागज का प्रयोग होने लगा।[1]

अंग्रेजों की फरमाइश पर या उनके प्रश्रय में बनाये गये इन चित्रों पर स्वाभाविक था कि अंग्रेजी चित्रशैली की छाप पड़ती, मुगलशैली तो इनके चित्रांकन की नींव ही थी, अतएव पटना की जिस शैली का ऊपर जिक्र किया गया है, वह इन दोनों की सम्मिलित शैली है।

अंग्रेजों के अलावे देशी राजे-महाराजे, जमींदार सेठ-सहुकारों में भी ने चित्रकारी का काफी शौक था। उनके आदेश पर भी पटना के चित्रकारों बहुत-से चित्र बनाये थे। दरअसल आरंभिक दिनों में इनको सहायता

---

1. डा० माधुरी अग्रवाल, बिहार की संक्रांतिकालीन चित्र शैली', **प्रॉसिडिंग्स ऑफ बिहार इतिहास परिषद्**, मुजफ्फरपुर, 1970, पृ० 202-2026

और संरक्षण ही से ये चित्रकार जीवित रह सके। पूर्वोक्त चित्रों में अधिकांशतः उनकी या उनके पूर्वजों की तस्वीरें अथवा पौराणिक चित्र थे—कुछ विवाह, पूजा आदि के अंकन और कुछ पशु-पक्षियों के खाके। अबरक के पत्तरों पर चित्रांकन की परिपाटी भी चल रही थी। इस पर ये चित्रकार बड़े सुन्दर चित्र बनाया करते थे।

19 वीं शती पटना-कलम या शैली का अभ्युदयकाल माना जा सकता है। इसने अनेक बड़े-बड़े निपुण चित्रकारों को जन्म दिया, जिनमें सबसे पहला नाम सेवक राम का आता है। इनके बनाये हुए कुछ चित्र कलकत्ता आर्ट स्कूल के भू० पू० उपाध्यक्ष श्री ईश्वरी प्रसाद, जिनके पितामह शिव-लाल (1850 ई०) पटना के मशहूर चित्रकारों में थे, के संग्रह में हैं। ये कजली स्याही से बनाये गये हैं—पेंसिल-स्कैच पर नहीं, बल्कि सीधे कागज पर तूली से अंकित किये गये हैं। रंगों के चुनाव से यह साफ परिलक्षित है कि इनके ऊपर अंग्रेजी शैली का काफी प्रभाव था।

सेवक राम के बाद हुलासलाल का नाम आता है। इनके पूर्वज काशी से आये थे, जहाँ उन्हें काशीराज का संरक्षण प्राप्त था। इनके चित्र भी कजली स्याही में हैं। इन्होंने यूरोपीयन स्त्री, पुरुष, बच्चों के अनेक व्यक्तिगत चित्र अंकित किये थे।

इनके बाद जयराम दास, झुमकलाल, फकीरचंद लाल के नाम उल्लेखनीय हैं। इस समय के—1830 से 1850 के बीच के-बने हुए अनेक फिरका चित्र या हाथीदांत पर बनी हुई तस्वीरें पायी जाती हैं। चित्रों में अनेक ऐसे हैं, जो होली, दिवाली, संगीत-समारोह, पियक्कड़ों की मजलिस आदि को प्रदर्शित करते हैं। हाथीदांत पर बनी हुई बेगम-भाव की तस्वीरें बड़ी सुन्दर हैं।

1850 से 1880 के बीच के चित्रकारों में शिवलाल (1880 ई०) और शिवदयाल लाल के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसमें शक नहीं कि ये दोनों ही बड़े कुशल चित्रकार थे—इनकी कलम में खूबसूरती थी, जोर था। शिवलाल के संबंध में कहा जाता है कि वह पटना शहर से बांकीपुर पालकी पर जाते थे और वहीं बैठकर घण्टे-भर में चित्र तैयार कर देते थे। इसके लिए उनकी फीस दो अशर्फियां थीं। इन दोनों के चित्रों में स्वाभाविकता पूर्ण रूप से भरी है। पटना के भू० पू० बैरिस्टर श्री मानुक के संग्रह किये हुए सारे चित्र, जो इस देश की अमूल्य निधि थे,

देश से बाहर चले गये। भारत छोड़ने के पहले उन्होंने इन्हें बेचना चाहा, यहाँ के कई धनी-मानी व्यक्तियों के पास 'ऑफर' भेजे, पर कोई उन्हें खरीदने को तैयार नहीं हुआ और अन्त में वे किसी अमेरिकन के हाथों बिक गये।

गदर केसमय पटना का एक कमिश्नर था – टेलर, जिसका नाम गदर के सिलसिले में भी बार-बार तत्कालीन सरकारी दस्तावेजों में आया है। वह स्वयं एक कुशल चित्रकार था। उसके चित्रों में पटना-कलम की पूरी छाप है।

शिवलाल और शिवदयाल लाल के कारण पटना-चित्रकला को बड़ा बल मिला, दर्जनों चित्रकारों को उन्होंने पैदा किया। फिरका चित्रों की एक बाढ़-सी आ गयी। गोपाल लाल, गुरुसहाय लाल दाणी लाल, बहादुर लाल, कन्हाई लाल, जयगोविन्द लाल आदि दर्जनों छोटे-बड़े चित्रकारों ने पटना-शैली को आगे बढ़ाया। इनमें से अधिकांश चित्रकारों की शिक्षा शिवलाल की चित्र-निर्माणशाला में हुई थी।

1880 में शिवदयाल लाल की और इसके सात साल के बाद शिवलाल की मृत्यु हुई। महादेव लाल की शिष्य-परम्परा में आर्ट कॉलेज, पटना के भूतपूर्व प्राचार्य राधामोहन जी हुए। इनके बाद कोई ऐसा चतुर चितेरा पैदा न हुआ, जिसकी यहाँ चर्चा की जाए, पर पटना-कलम जिन्दा रही।

वर्त्तमान काल में भी पटना को एक कुशल चित्रकार को जन्म देने का गौरव प्राप्त हुआ। वह थे उपर्युक्त शिवलाल की पुत्री सोनाकुमारी के पुत्र श्री ईश्वरी प्रसाद जो 1904 में कलकत्ता के सरकारी आर्ट स्कूल में अध्यापक नियुक्त हुए और पीछे चलकर उपाध्यक्ष के पद को भी जिन्होंने सुशोभित किया। इन पंक्तियों के लेखक को उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। जीवन के पिछले दिनों में उन्होंने पटना-कलम के पुनरुत्थान के यत्न किये, पर इसके बावजूद उनके स्वर्गारोहण के साथ-साथ पटना-शैली की एक प्रकार से समाप्ति हो गई।

पटना के चित्रकारों की एक विशेषता थी जो मुगल, राजस्थानी अथवा पहाड़ी चित्रकारों में नहीं पायी जाती है। वह यह थी कि जहाँ औरों ने राजाओं या पौराणिक आख्यानों के चित्रांकन ही में अपना सारा जीवन व्यतीत किया, पटना के चित्रकारों ने देश की सर्वसाधारण जनता को अपनाया और उनके वास्तविक जीवन की झांकियाँ प्रस्तुत कीं।

यही नहीं, उन्होंने श्रमिकों की कीमत समझी, उन्हें आदर की दृष्टि से देखा और अपने चित्रों में उन्हें भी स्थान दिया। 'मछली बेचनेवाली' 'टोकरी बनाने वाला', 'चक्की चलाने वाली,' 'लुहार', 'नौकरानी,' 'दर्जी', 'चर्खा चलाने वाली' आदि इसके दृष्टांत हैं।

पशुओं में जहाँ हाथी और घोड़े अंकित किए, वहाँ निम्न श्रेणी के जानवर और सवारियों को भी वे नहीं भूले। बाणलाल ने गधे का एक सुन्दर चित्र खींचा—किसी अज्ञात चितेरे ने 1810 के लगभग एक बैलगाड़ी का और सेवक राम ने (1770—1830) इक्के का।[1]

19 वीं शताब्दी में विदेशियों ने भारतीय चित्रकारों से रंगीन चित्र बनवाकर इसके माध्यम से भारत पर ब्रिटिश शासन के महत्व को दिखलाया और ब्रिटिश जनता की सहानुभूति प्राप्त की। 1858 के पश्चात् भारतीय चित्र निर्माण से अंग्रेजों का ध्यान हटने लगा। 1870 में कैमरा बन जाने से भारतीय कलाकारों से अंग्रेजों की रुचि बिल्कुल घट गई।[2]

●

1. राजेश्वर प्रसाद सिंह, बिहार—अतीत के झरोखे से, दिल्ली, 1986 पृ० 148-54
2. डा० माधुरी अग्रवाल, पूर्वोद्धृत

अध्याय-8

पटना में वहाबी आन्दोलन

वहाबी का शाब्दिक अर्थ नज्द या "अरब के अब्दुल वहाब का शिष्य' होता है। तुर्क के अधिकारियों का वहाबी लोग देवता के समान आदर करते थे। वहाबियों ने उत्तरी अफ्रिका में अंग्रेजों का विरोध किया था। वहाबी आन्दोलन का केन्द्र पटना 1822 से 1868 तक बना रहा। इस आन्दोलन का नेतृत्व पटना के एक सम्पन्न मुस्लिम परिवार, जो अपनी विद्वत्ता और धर्मनिष्ठा के लिए प्रसिद्ध था, के हाथों में था।

रायबरेली के सैयद अहमद द्वारा वहाबी आन्दोलन पहले रायबरेली में शुरू किया गया ताकि मुसलमानों की सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति में सुधार किया जा सके। इस क्रम में यह आन्दोलन अंग्रेज-विरोधी हो गया। सैयद अहमद ने अंग्रेजी शोषण और भारतीयों की दुर्दशा के सम्बन्ध में एक पत्र मराठा राजा हिन्दूराय को भी लिखा। सैयद अहमद के कार्यों को देख जिन अनेक लोगों ने उनका अनुयायी बनना पसन्द किया उनमें से एक थे पटना के मौलवी विलायत अली। उन्होंने लखनऊ में अपनी पढ़ाई तुरंत समाप्त की और पटना आ गये।

हज पर जाने वाले कुछ मुसलमानों के साथ कलकत्ता जाने के सिलसिले में सैयद अहमद 1820 में पटना भी रुके। मौलवी विलायत अली ने सैयद अहमद एवं अन्य मुसलमानों का पटना में स्वागत किया। 1822 में वे मक्का से कलकत्ता आये। विलायत अली और शाह मुहम्मद हुसैन ने मुंगेर जाकर सैयद अहमद से भेंट की और उन्हें पटना लाया गया। विलायत अली के यहाँ सैयद अहमद ठहरे। यहाँ उनके अनुयायियों की संख्या इतनी बढ़ी कि विधिवत् एक संगठन स्थापित किया गया। इस संगठन को चलाने के लिए चार खलीफे (आध्यात्मिक उपमुखिया) विलायत अली, इनायत अली, शाह मोहम्मद हुसैन तथा फरहात हुसैन मनोनीत किये गए। पटना वहाबी आन्दोलन का एक स्थायी केन्द्र बन गया। पटना के चारों खलीफाओं ने प्रमाणित कर दिया कि वे अति-परिश्रमी, स्वयं

आदर्शवादी, अंग्रेज-विरोधी, उद्देश्यों में निष्ठावान, पक्के इरादेवाले, धन इकत्रित करने एवं अनुयायियों की संख्या बढ़ाने में काफी कुशल थे।

विलायत अली एवं उसके भाई इनायत अली तथा तालीम अली और उसके भाई बकर अली ने सैयद अहमद को रायबरेली तक पहुँचाया। सैयद अहमद ने पटना से बाहर जा-जाकर वहाबी आदर्शों का प्रचार करना शुरू किया। उसके शिष्यों की संख्या बढ़ती गयी। कार्यकर्त्ताओं को व्यायाम करने और औजार चलाने का प्रशिक्षण दिया जाता ताकि वे काफी परिश्रम करें और अंग्रेजों से सफलतापूर्वक टकरा सकें। इसके सदस्य सैनिक वर्दी धारण किया करते।

सैयद अहमद के आदेश से **सरित-इ-मुस्तकुम** नामक छोटी पुस्तक का सम्पादन शिष्य मौलवी मोहम्मद इस्माइल तथा मौलवी हैय ने किया। इस पुस्तक के माध्यम से बताया गया कि प्रत्येक सच्चे मुसलमान का प्रथम कर्त्तव्य अंग्रेजों द्वारा प्रशासित देश का त्याग (हिजरत) करना था। वहाबी आन्दोलन से सम्बन्धित मौलवियों ने **रीशाला-ए-जेहाद** तथा **रीशाला-ए-हिजरत** जैसी पुस्तिकाएं लिखीं जिनमें मुसलमानों को एक होकर हिन्दुस्तान जीतने के लिए जेहाद करते रहने की प्रेरणा दी गई थी। वहाबी अनुयायियों को विश्वास था कि उनके नेताओं द्वारा अंग्रेजी सरकार का पतन निश्चित था। इस सम्बन्ध में एक कविता (कसीदा) प्रकाशित की गई जिसकी रचना 12 वीं शताब्दी में संतकवि शाह नियामतुल्ला ने की थी। इसमें मुस्लिम नेता द्वारा ईसाइयों का विनाश होने की भविष्यवाणी की गई थी।

हिजरत के सिद्धान्तानुसार सैयद अहमद अपने कुछ अनुयायियों के साथ रायबरेली चल पड़ा। पटना के कुछ मौलवी विलायत अली और इनायत अली भी सैयद अहमद के साथ थे। रायबरेली से ये लोग अफगानिस्तान गए और वहाबी मत का प्रचार किया। बिहार और बंगाल में वहाबी सिद्धान्त का प्रचार शाह मुहम्मद हुसैन कर रहे थे। उनके अथक परिश्रम और उत्साह के कारण यह संगठन दिन पर दिन अधिक शक्तिशाली बनता जा रहा था। राजमहल, राजशाही नदिया, मालदह, बारासत, ढाका आदि स्थानों पर वहाबी संगठन की शाखाएँ खोली गयीं। कुछ एजेंट नियुक्त किये गए जो चन्दा वसूलते और सीमान्त पर युद्ध के उद्देश्य से लोगों को भर्ती करते थे।

सैयद अहमद के कहने पर 1829 में विलायत अली हैदराबाद, मध्यप्रदेश और बम्बई में वहाबी सिद्धान्त को प्रचारित करने गये। बंगाल में इस के लिए इनायत अली भेजे गए। सैयद अहमद के विचार को प्रसारित करने में विलायत अली का प्रथम स्थान था। उसके कारण बंगाल में वहाबी आन्दोलन के समर्थकों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। इस आन्दोलन के समर्थन में विलायत अली ने एक पुस्तक लिखी। हैदराबाद के शासक का छोटा भाई सैयद अहमद का अनुगामी बना और हैदराबाद में इसका काफी प्रचार हुआ। इस बीच सैयद अहमद की मृत्यु बालाकोट में हो गई। आन्दोलन की गति धीमी हो गई। विलायत अली और इनायत अली तुरंत पटना आकर इस आन्दोलन को मजबूत बनाने के प्रयास में लग गए। पटना के वहाबी केन्द्रों को विलायत अली काफी शक्तिशाली बनाने के प्रयास में व्यस्त हो गए। यही भूमिका इनायत अली ने बंगाल में निभाई। आन्ध्रप्रदेश के अलावे त्रिपुरा और सिलहट में वहाबी आन्दोलन को सुदृढ़ करने में जेनुल आबदीन लगा रहा। वहाबी मत में दीक्षित होने वाले कृषकों की संख्या बढ़ी। पटना के वहाबी नेताओं की प्रशंसा स्वयं हण्टर ने की है।

मध्यप्रदेश के सतना नामक स्थान में विलायत अली का भाई वहाबी व्यवस्था की देख-रेख में गया। 1839 में इनायत अली भी सतना गया और वहाबी आन्दोलन का नेतृत्व स्वयं करने लगा। पटना से आर्थिक सहायता सतना पहुँचती रही। वहाँ के वहाबी सैनिक मुख्यालय में नये रंगरूट काफी संख्या में भर्ती किये गए। अपने 80 अनुयायियों के साथ विलायत अली 1944 में पटना से अफगानिस्तान की ओर चला। इस काफिले में मौलवी फैजअली, याहिया अली, अकबर अली और उसके परिवार के अन्य सदस्य भी थे। इनायत अली द्वारा किये जा रहे वहाबी आन्दोलन के प्रचार की सूचना विलायत अली को मिली।

अंग्रेजों को वहाबी आन्दोलन की जानकारी थी। पंजाब में वहाबी आन्दोलन पर अंग्रेजों ने रोक लगा दी। हरिपुर (पंजाब) में इनायत अली गिरफ्तार कर लिया गया। अन्य आन्दोलनकारी भी पकड़े गए। अंग्रेज सैनिकों की देख-रेख में वे लाहौर लाए गए। सरकारी दबाव से वहाबी आन्दोलनकारियों ने अपने युद्ध से सम्बन्धित सभी हथियार तथा तोप सरकार के हाथों बेच दिये। इनायत अली और विलायत अली सैनिक देख-रेख में पटना पहुँचाए गए और इन्हें 10,000 रुपये की जमानत

पर छोड़ा गया और चार वर्षों के लिए पटना सिटी से बाहर निकलने पर रोक लगा दी गई। स्वतंत्रता के दिवाने इन वहाबी मौलवियों ने सरकारी आदेश को कोई महत्त्व नहीं दिया। विलायत अली और इनायत अली का पत्राचार मीर औलाद अली के साथ चलने लगा। मीर औलाद अली हरिपुर (पंजाब) से सरकार से नजर चुराकर भाग गया था। उस पर वारंट था। वहाबी मत का पटना में प्रचार करने में विलायत अली प्रयत्नशील रहा। अपने सम्बन्धियों को उसने प्रचार कार्य के लिए पटना से बाहर भेजा। अपने शिष्यों को उत्साहित तथा उनकी संख्या में वृद्धि के लिए इनायत अली बंगाल गया। राजशाही (बंगाल) में वह स्थानीय मजिस्ट्रेट द्वारा शंका की दृष्टि से देखा गया। इनायत अली को मजिस्टेट के इरादे की जानकारी मिल गई और वह पटना आ गया। उसकी गिरफ्तारी का वारन्ट राजशाही से पटना पहुँचा। पटना के मजिस्ट्रेट इनायत अली के बारे में जानकारी प्राप्त की। इनायत अली को पता चला और वह पटना छोड़ कर उत्तर-पश्चिम की ओर भाग गया। सतना के वहाबी आन्दोलन का नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया।

1850 में विलायत अली अपने परिवार के सदस्यों एवं इष्ट अनुयायियों के साथ पटना से सतना की ओर चला। उसके सथ याहिया अली और फैयाज अली भी थे। रास्ते में पड़ने वाले सभी बड़े नगरों मे इनलोगों ने वहाबी मत का प्रचार किया। दिल्ली के फतहपुरी मस्जिद में यह दल एक बड़े मकान में दो माह तक ठहरा। जुम्मा के नमाज के बाद विलायत अली वहाबी मत का संदेश सुनाता और कुछ ही दिनों के भीतर दिल्ली में उसके प्रशंसकों की संख्या बढ़ गई। अंतिम मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर द्वारा विलायत अली दरबार में आमंत्रित किया गया। दल के शेष लोग भी दरबार में आए। विलायत अली के दिल्ली पहुँचने से पूर्व सम्पूर्ण सीमान्त प्रदेश का एकछत्र नेता इनायत अली वीर, उत्साही, अच्छा प्रचारक एवं संगठनकर्त्ता होने के बावजूद विलायत अली की तुलना में उसमें राजनीतिक गुणों का अभाव था। दूसरी तरफ अच्छी राजनीतिक सूझबूझ रखने वाला, विलायत अली सैयद अहमद के प्रथम शिष्यों में से था। सैयद अहमद के साथ वह कुछ दिनों तक रहा भी था। मध्यभारत, आन्ध्र-प्रदेश, बम्बई और सिन्ध की उसने यात्राएं की थीं। अंग्रेजी शक्ति की उसे अच्छी जानकारी थी। अपने शत्रु द्वारा शासित देश से हिजरत कर वह अपनी आत्मा को पवित्र कर चुका था। सही समय पर आन्दोलन की गति

तेज करने की उसमें क्षमता थी। धीरज और अध्यवसाय के साथ वहाबी आन्दोलन की प्रगति की बात वह सोचा करता। वह जानता था और अपने अनुयायियों को बताया भी कि अंग्रेजों को सजा देना मात्र वहाबी आन्दोलनकारियों के लिए सम्भव नहीं। ठीक समय पर उचित कदम उठाने में उसे विश्वास था। उसकी गतिविधियों की जानकारी अंग्रेजों को न मिले इसके लिए वह सदा सावधान रहता। वह जानता था कि अंग्रेजी सरकार अगर वहाबी आन्दोलनकारियों के प्रति एक बार भी सावधान हुई तो प्रांतों से जो कुछ साज-सामान एवं धन की आपूर्ति हो रही थी उसे समाप्त कर देती।

विलायत अली की सारी बातें मानने के लिए उसके अनुयायी तैयार नहीं थे। उनका विचार था कि अंग्रेजों से टकराने लिए सैनिक कार्यवाही शुरू कर देनी चाहिए। विलायत अली की नीति कुछ लोगों को अपमानजनक लगती। इन मतभेदों के बावजूद सैयद अहमद का उत्तराधिकारी विलायत अली को माना गया। वहाबी मत के सारे अनुयायियों ने विलायत अली से पुनः दीक्षा ली। [illegible] के अनुयायियों को विलायत अली धर्मसंदेश दिया करता। अनुयायियों को प्रतिदिन सैनिक कवायद करनी पड़ती। कुछ दिनों के पश्चात 1854 में 64 वर्ष की आयु में विलायत अली की मृत्यु हो गई।

वहाबी आन्दोलन का प्रमुख नेता इनायत अली हुआ। बिहार और बंगाल में आन्दोलन की गति तेज करने का निर्देश अपने अनुयायियों को दिया। 1852 में पंजाब के अधिकारियों ने सरकार विरोधी कुछ पत्रों को पकड़ा जिनमें सैनिक विद्रोह के साजिश की बात थी। इस षड्यंत्र की मूल योजना पटना में बनी थी। पत्रों से इस बात की भी जानकारी हुई कि मौलवी विलायत अली, इनायत अली, फैयाज अली, याहिया अली और मौलवी करम अली सैयद अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध युद्ध के लिए सित्तना (सतना) में ठहरे हुए थे।

पंजाब सरकार के कहने पर पटना के मजिस्ट्रेट ने मौलवी अहमदुल्ला के खानसामा हुसैन अली खां के घर की तलाशी करवाई जहाँ से इस बात का सबूत मिला कि यहीं से वे पत्र लिखे गए जो पंजाब सरकार को मिले थे। फलतः पटना के क्रांतिकारी सावधान हो गए और सरकारी पत्रों को नष्ट कर दिया। 10 अगस्त 1857 में पटना के मजिस्ट्रेट ने सरकार को सूचित किया कि वहाबी सम्प्रदाय के लोगों की संख्या में वृद्धि

होती जा रही थी। मजिस्ट्रेट ने विलायत अली, अहमदुल्ला और इलाही वरुश को इस सम्प्रदाय का प्रमुख नेता बनाया। कुछ सिपाहियों द्वारा इन्हें मदद देने की सूचना भी मजिस्ट्रेट ने सरकार तक पहुँचाई। मजिस्ट्रेट ने पुनः सूचित किया कि मौलवी अहमदुल्ला ने उस समय 6-7 सौ हथियारबंद लोगों को अपने अहाते में जमा कर रखा था जब उसके घर की तलाशी ली जा रही थी और सरकार के विरुद्ध कदम उठाने की तैयारी में वह व्यस्त था। 20 अगस्त 1852 को लार्ड डलहौजी ने पटना के इन वहाबी आन्दोलनकारियों पर कड़ी नजर रखने का आदेश जारी किया। चौथे नेटिव इन्फैन्टरी के एक रेजिमेन्टल मुंशी मोहम्मद वली पर रावलपिंडी में एक मुकदमा चलाया गया था और 12 मई, 1853 को सजा सुनाई गई थी। इस मुकदमे के दरम्यान मौलवी अहमदुल्ला तथा पटना के कुछ अन्य अधिवासियों द्वारा सीमान्त साज-सामान भेजने के साक्ष्य भी मिले। पठानों का समर्थन प्राप्त करने के प्रयास में इनायत अली लगा था। स्वात के आखून्द और मितना के सैयदों की सहानुभूति एवं इनमें से उनके अनेक सदस्यों को अपने कार्य में दीक्षित करने में उसे सफलता भी मिली थी।

लगभग एक महीना बाद अपने सम्पूर्ण दलबल के साथ इनायत अली ने अंग्रेजी क्षेत्र के सीमान्तवर्ती बस्ती नारींगी पर छापा मारकर कब्जा कर लिया। यह खबर पेशावर पहुँची। वहाँ के उपायुक्त कुछ सैनिकों के साथ सीमांत की ओर इनायत अली के विरुद्ध कार्रवाई करने को बढ़ा। इनायत अली की सैनिकों के साथ उसकी जमकर लड़ाई हुई। अंग्रेज सैनिक पूरी तरह पराजित हुए। अंग्रेजों की ओर से दूसरा आक्रमण भी किया गया। इसमें उन्हें आंशिक सफलता मिली और इनायत अली के सैनिकों को चिंघाई और बाग में शरण लेनी पड़ी। कुछ काल बाद उसके कुछ सैनिक नावाकेल के सहायक आयुक्त, लिफ्टनेंट हार्न पर रात में आक्रमण करने के उद्देश्य से भेजा। अंग्रेज इस आक्रमण के लिए तैयार नहीं थे। फलत: आक्रमणकर्त्ता उन्हें पराजित करके और लूटपाट का काफी साज-सामान लेकर लौट गया। इनायत अली ने लूट के माल को पहाड़ी कबिलाइयों के मुखियों के बीच वितरित कर दिया। वह इन कबिलाईयों को अपने पक्ष में लाना चाहता था। 1858 में भारतीय क्रांति की प्रथम आग सारे देश में फैल गई। इनायत अली का सम्बन्ध पटना से टूट गया। वह चिंघाई से स्वात गया, बीमार पड़ा और 1858 में मर गया। पटना के आयुक्त, विलियम टाइलर ने वहाबी नेताओं के विरुद्ध कठोर कदम

उठाया। पटना के कुछ प्रभावशाली मौलवियों को गिरफ्तार किया गया।

इनायत अली का बेटा मौलवी अब्दुल्ला स्वात से पटना आ गया था। पटना की स्थिति देख वह जायदाद बेच अपने परिवार के साथ मक्का चला गया। लौटने पर वह स्वात पहुँचा और अपने पिता के मित्र और स्थानीय कबीलों के मुखिया सैयद अकबर शाह से मिला।

1850 से 1858 तक पश्चिमोत्तर सीमान्त क्षेत्रों में अंग्रेज विरोधी वातावरण बनाये रखने में वहाबी लोग सफल रहे। इस क्षेत्र में अंग्रेजी सरकार द्वारा 16 बार आक्रमण करना पड़ा जिनमें लगभग 33,000 सैनिकों ने भाग लिया लेकिन परिणाम कुछ भी नहीं निकला। अंत में जेनरल सर सिडनी कॉटन के नेतृत्व में 219 तोपखाने, 551 घुड़सवार और 4017 पैदल सेना ने इस क्षेत्र पर आक्रमण किया। वहाबी समर्थक कुछ कबिलाई बस्तियों को जला देने में अंग्रेजी सेना सफल रही। सितना की वहाबी बस्ती का विध्वन्स कर दिया गया। वहाबी लोग अब मुहाबान पर्वतमाला की ओर चले गए लेकिन उनकी ताकत में कोई कमी नहीं हुई थी। मुहाबान के एक स्थानीय कबीला ने मुल्का में उन्हें नई बस्ती बसाने की सुविधा प्रदान की। इस क्षेत्र में वहाबी दो वर्षों तक रहे। 1861 में उनलोगों ने पुनः सितना में किलेबन्दी की। बिहार, और उत्तर-प्रदेश से रंगरूट काफी संख्या में आने लगे। जुलाई 1868 तक सारा सितना वहाबियों के अधिकार में आ गया। 7 सितम्बर 1863 को वहाबी सैनिकों ने भारतीय सीमांत क्षेत्रों पर आक्रमण किया। 1863 के इसी माह में उन्होंने अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध खुले युद्ध का ऐलान किया। सभी धर्मनिष्ठ मुसलमानों से इस धर्मयुद्ध में सम्मिलित होने की आशा की गई। 18 अक्टूबर 1863 को 7000 अंग्रेजी सेना वहाबियों को कुचलने के लिए चल पड़ी। वहाबी नहीं हराये जा सके। अंग्रेजों ने फूट डालने की चाल चली और 16 दिसम्बर 1863 को बोनेट कबीला को मिला लिया। कुछ अन्य कबीले भी अंग्रेजों के साथ हो गए। इन कबीलों की मदद से अंग्रेज सैनिकों ने मुल्का पर अधिकार कर जला दिया। यहाँ से वहाबियों ने अपने नेता अब्दुल्ला के साथ भागकर अफगानिस्तान के पहाड़ी क्षेत्रों में शरण पायी और भावी युद्ध की तैयारी में लग गए। वहाबियों को पूर्णतः नष्ट किए बिना पंजाब सरकार को उनसे मुक्ति मिलने की सम्भावना नजर नहीं आती।

सारे देश में वहाबी आन्दोलन को कुचलने की नीति अंग्रेजी सरकार द्वारा तय की गई। थानेश्वर के मोहम्मद जफर और पंजाब के महम्मद शफी तथा हुसैनी को पारसन नामक एक पुलिस अधिकारी ने गिरफ्तार कर उन्हें काफी सताया ताकि वहाबियों की गुप्त योजनाओं की जानकारी मिल सके। पटना के एक व्यापारी इलाही बख्श, उसका नौकर हुसैनी, मुहम्मद शफी का नौकर अब्दुल करीम, बंगाल के काजी मियां जान तथा जफर के एक सहायक अब्दुल गफ्फार को गिरफ्तार किया गया। पटना पहुँचकर पारसन ने याहिया अली, अब्दुल रहीम, उनके नौकर, अब्दुल गफ्फार आदि कई लोगों से वहाबी आन्दोलन के बारे में पूछताछ की। कई औरतों से भी पूछताछ की गई। एक दो दिनों पश्चात् सरकार विरोधी अनेक मुद्रित प्रतियों, पत्र, प्रलेख, पुस्तकें एवं अन्य कागजात, वहाबी आन्दोलन के उपर्युक्त मुस्लिम कार्यकर्त्ताओं के यहाँ से जप्त किये गए। 10,000 की जमानत पर याहिया अली छोड़े गए लेकिन पुनः उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। अब्दुल रहीम, उसका नौकर, याहिया अली आदि कैदियों को डेढ़ माह तक पटना जेल में रखने के पश्चात् उन्हें रेल से अम्बाला जेल भेज दिया गया। अम्बाला जेल में मुंशी मुहम्मद जफर, मोहम्मद शफी और उसका भतीजा अब्दुल करीम, पटना के हुसैनी, थानेश्वर के हुसैनी, बंगाल के [illegible] तथा काजी मियांजान और हजारीबाग जिला के अब्दुल गफ्फार भी थे। इन सभी आन्दोलनकारियों को अलग-अलग सेलों में रखा गया। प्रत्येक कमरा [illegible] फीट लम्बा और 4 फीट चौड़ा था। इनमें हवा और रोशनी के लिए मात्र एक छोटी-सी सुराख था। सारे कैदियों की स्थिति दो-तीन माह में जिन्दा लाश के समान हो गई। तीन माह बाद उन्हें मजिस्ट्रेट की अदालत में पेश किया गया। दो माह तक इन पर मुकदमे की कार्रवाई चलती रही। वहाबियों ने अपनी तरफ से कोई वकील नहीं खड़ा किया। प्रारम्भिक सुनवाई के बाद अम्बाला की सेशन जज की अदालत में उनपर मुकदमा चलाया गया। 2 मई, 1864 को न्यायाधीश सर एडवर्ड ने अपना फैसला सुनाया जिसके अनुसार याहिया, जफर और शफी को मृत्युदण्ड तथा शेष को आजन्म कालापानी की सजा सुनाई गई। सारे अभियुक्तों की सम्पत्ति जप्त कर ली गई। अंत में मृत्यु दंड पाने वालों की सजा कालपानी में बदल दी गई।

वहाबी आन्दोलन का संचालन भार अहमदुल्ला ने सम्हाल ली।

वह कलकत्ता से पुनः पटना आ गया। गुप्तचर विभाग द्वारा अहमदुल्ला पर कड़ी नजर रखी जाने लगी थी। सरकार विरोधी गतिविधियों के लिए अहमदुल्ला 5 नवम्बर 1864 को गिरफ्तार किया गया। इस समय पटना के कुछ अतिप्रभावशाली लोगों में से अहमदुल्ला एक था और उसके विरुद्ध गवाही देने वाला सरकार को कोई नहीं मिला। गवाही वही दे सकता था जो आन्दोलन से सम्बन्धित होता और अंग्रेज विरोधी षड्यन्त्र की उसे जानकारी होती। पटना के सरकारी अधिकारियों ने अहमदुल्ला को दोषी करार करने के लिए पंजाब सरकार से मदद लेने का प्रयास किया। पंजाब की मदद से अहमदुल्ला के विरुद्ध गवाह मिल गया और पटना हाईकोर्ट ने उसे कालापानी की सजा देकर 13 अप्रैल 1865 को फोर्टब्लेयर भेज दिया। अहमदुल्ला का करीम बख्श नामक एक भक्त इसके कारण सम्बन्धित न्यायधीश ऐसलाक की हत्या करनी चाही जिसे 24 अप्रैल 1865 को 10 वर्ष की कठोर सजा दी गई।

वहाबी आन्दोलन से सम्बन्धित अनेक अनुयायी कालापानी की सजा भुगतने अंडमन भेज दिये गए और पटना में उनकी सम्पत्तियों को जप्त करने का निर्णय सरकार ने लिया। मौलवी अहमदुल्ला की वार्षिक आय लगभग 20 हजार रुपये की थी। ये सारे जप्त कर लिये गए। अहमदुल्ला की पटना की सम्पत्ति जप्त कर ली गई। सादिकपुर के वहाबी परिवारों की आर्थिक स्थिति अति खराब हो गई। इसके बावजूद वहाबी आन्दोलन की आग सुलगती रही। आन्दोलनकारियों को यथेष्ट धन मिलता रहा। इनका पूर्णतः विनाश करने के लिए एक विशेष पुलिस विभाग का गठन किया गया। अहमदुल्ला और याहिया अली को कालापानी भेजने के पश्चात् पटना में वहाबी आन्दोलन का नेता मौलवी मुबारक अली हो गया। इस आन्दोलन की गति तेज करने के लिए संथालपरगना में इब्राहिम मंडल और मालदा जिला में अमरुद्दीन काम कर रहे थे। सत्तना में सरकार के विरुद्ध कबालाइयों को भड़काने में अहमदुल्ला के भाई मौलवी फयाज अली, विलायत अली का ज्येष्ठ बेटा मौलाबख्श तथा हफीज हसमुद्दीन लगे थे।

विशेष पुलिस विभाग ने संथालपरगना के कई वहाबी आन्दोलनकारियों को गिरफ्तार किया। इसलामपुर के कुछ वहाबियों को आजीवन कारावास का दण्ड मिला। दिसम्बर, 1868 में पटना के चुन्नी और मोहम्मद इस्माइल गिरफ्तार किये गए। चुन्नी लाल बाद में छोड़ दिया गया और शेष को दो वर्ष की कठोर सजा मिली।

कलकत्ता के अमीर खां और हस्मत दाद खां द्वारा एकत्रित धन से स्वर्णाभूषण खरीदकर वहाबी आन्दोलन के पटना केन्द्र से सत्तना भेजे गए। ये दोनों मुसलमान पटना सिटी के आलमगंज मुहल्ला के रहने वाले थे। 12 जुलाई 1864 को वहाबी कार्यकर्त्ता अमीर खां और 26 अगस्त 1869 को हस्मत दाद खां गिरफ्तार कर लिये गये। अगस्त 1869 को कलकत्ता के सबसे प्रसिद्ध वकील एन्सटे ने इन दोनों को छुड़ाने की अर्जी पेश की लेकिन दानों को जमानत स्वीकृत नहीं हुई। अमीर खां की मृत्यु 76 वर्ष की अवस्था में अंडमान में हो गई। हस्मत दाद खां सजा काटकर रिहा हुआ और पटना में उसकी मृत्यु 67-68 वर्ष की आयु में 1879 ई॰ में हो गई।

1870-71 में वहाबियों की स्थिति खराब होने लगी। पक्के इरादे वाले कार्यकर्त्ताओं का अभाव हो गया। पुराने नेताओं को पुलिस अपने जाल में फांस ली। सरकार के कठोर कदम से वहाबी समर्थकों की संख्या घटने लगी थी। आर्थिक मदद करने वालों की संख्या पहले की तुलना में कम हो गई। शेष वहाबिया को सफलता नजर नहीं आती थी।

1884 में सादिकपुर के मौलवी अब्दुर रहीम की पत्नी लार्ड रिपन से अपने पति एवं अन्य वहाबी बंदियों को जेल से छोड़ देने की प्रार्थना की। उसके आवेदन पर विचार किया गया और कई वहाबियों को जेल से रिहा कर दिया गया। इनकी संख्या मात्र पांच के लगभग थी।

इस तरह सामाजिक तथा धार्मिक सुधार के लिये पटना से मुसलमानों द्वारा किये गए प्रयास असफल रहे। वहाबी आन्दोलन का लगभग 46 वर्षों तक प्रमुख केन्द्र पटना रहा। इस आन्दोलन ने भारत के अनेक हिस्सों में अंग्रेज विरोधी भावना विकसित कराने में सहयोग प्रदान किया। अन्य आन्दोलनों के समान इस आन्दोलन को कुचलने के लिए अंग्रेजी सरकार कोई भी चाल चलने से बाज नहीं आयी। इस आन्दोलन को अधिकांश मुसलमानों ने समर्थन प्रदान नहीं किया। असफलताओं के बावजूद बिहार एवं भारत के ऐतिहासिक रंगमंच पर वहाबी आन्दोलन अपना एक ठोस स्थान बनाने में सफल रहा।

--

अध्याय—9

पटना और स्वतंत्रता आंदोलन

पलासी और बक्सर के युद्धों में अंग्रेजों को 1764 तक सफलता मिल गई। पटना विशेष रूप से ईस्ट इण्डिया कंपनी के शिकंजों में कस गया। पटना क्षेत्र के कुछ जमींदारों ने अंग्रेज सैनिकों से टकराने की तैयारी करने लगे। धनी मुसलमानों ने अनेक सैनिक अधिकारियों एवं जवानों को अपनी ओर फोड़ लिया। अंग्रेज सैनिकों को अपनी ओर मिलाने के प्रयास करने वालों में प्रमुख थे—रेजिमेंट के एक मुंशी शेख पीरबख्श और पंडित दुर्गा प्रसाद। पीरबख्श और पंडित दुर्गा प्रसाद गिरफ्तार कर लिए गए। इनके पास से अंग्रेज विरोधी प्रभावशाली चिट्ठियाँ पकड़ी गईं। इन दोनों ने अपना अपराध स्वीकार लिया। पटना के राहुत अली और हसन अली खाँ अंग्रेजों द्वारा गिरफ्तार किये गये। राहुत अली एक प्रभावशाली जमींदार और सर अली इमाम का संबंधी था। 1921 में लॉ कॉलेज का प्रिंसपल उसी का पोता मुहम्मद जमउद्दीन थे। कुछ दिनों के बाद दोनों छोड़ दिए गये। पटना के लॉ अधिकारी मौलवी नियाज अली पटना सिविल कोर्ट के सरकारी अधिकारी बरखुतुल्ला और मीर बकर को अंग्रेजों ने छोड़ दिया। 1857 की क्रान्ति में मौलवी अली करीम अंग्रेज विरोधी प्रमाणित हुआ और उसे कैद कर लिया गया। पटना प्रमण्डल के कमिश्नर टेलर ने 1857 में अपनी कोठी पर पटना के कुछ प्रतिष्ठित नागरिकों को तत्कालीन स्थिति पर विचार करने के लिए बुलाया और उसी बहाने मुहम्मद हुसैन अहमदुल्ला और वजिबुल्ला हक नामक तीन प्रभावशाली मौलबियों को अपना दुश्मन मान गिरफ्तार कर लिया। टेलर के इस कदम की आलोचना अनेक अंग्रेज लेखकों ने की।

तीन जुलाई 1857 को पटना में एक व्यापक विद्रोह हुआ, जिसमें बिहार के अफीम एजेंट का मुख्य सहायक डा० आर० कायस मारा गया। पटना के कम्पनी अधिकारी पटना के क्रान्तिकारियों से काफी डरने लगे थे। क्रान्तिकारी मौलवी अली करीम को आश्रय देने के अभियोग में पटना के फौजदार नजीर को कैद कर लिया गया। अली करीम को जिन्दा या

मुर्दा पकड़ने के लिए पुरस्कार की राशि दो हजार से बढ़ाकर 5 हजार कर दी गई। पटना में अली करीम को खोजने के सिलसिले में पटना सिटी में पीर अली खां नामक पुस्तक विक्रेता के घर तलाशी ली गई, जहाँ अंग्रेज विरोधी सामग्रियाँ मिलीं। पीर अली भाग गया, लेकिन दूसरे दिन शाम को गिरफ्तार कर लिया गया। पटना के अन्य 36 लोग गिरफ्तार किये गये। जिनमें 16 को मौत की सजा दी गई। जमींदार वारिस अली 6 जुलाई 1857 को मृत्यु दण्ड दिया गया। मरने के पूर्व उसने कहा था—"क्या कोई मुसलमान उसकी सहायता नहीं करेगा ?"

अंग्रेज विरोधी दल का नायक पीर अली का घर अंग्रेजों ने नष्ट कर दिया। खाजेकलां, पटना सिटी का दारोगा क्रान्तिकारियों की सारी खबर अंग्रेज को नहीं दिया, जिसके परिणामस्वरूप नौकरी से उसे हाथ धोना पड़ा। पीरबहोर का दरोगा उसके पद पर नियुक्त हुआ। आरा के जज कोर्ट का किरानो डासोलवा पीरबहोर का दरोगा नियुक्त किया गया।

सचिन्द्रनाथ सान्याल ने 1913 में एक अनुशीलन समिति की स्थापना पटना में की। इस समिति में मुख्य कार्यकर्त्ता बंकिमचन्द्र थे। 1912 में उन्होंने पटना के टी० के० घोष एकेडमी से मैट्रिक पास कर बी० एन० कॉलेज में नाम लिखाया। इसी कॉलेज का एक छात्र अखिल चन्द्र दास गुप्त तथा रघुवीर सिंह अनुशीलन समिति के तरफ से अंग्रेज विरोधी प्रचार कार्य करने में गुप्त रूप से लग गये। बी० एन० कॉलेज के अतुलचन्द्र मजुमदार, सुधीर कुमार सिन्हा, उनका भाई शिव कुमार सिन्हा, प्रफुल्ल कुमार विश्वास, धामनाथ झा, तथा इस कॉलेज के एक प्रोफेसर त्रिपेन्द्र नाथ वसु इस गुप्त संस्था में संलग्न थे।

बिहार प्रांत कांग्रेस का एक अधिवेशन पटना में 26 अगस्त 1917 को आयोजित हुआ। हसन इमाम ने इसकी अध्यक्षता और सच्चिदानन्द ने इस अधिवेशन का उद्घाटन किया। अंग्रेज विरोधी क्रान्ति को गति तेज करने का निर्णय लिया गया।

1919 में पटना में सत्याग्रह दिवस मनाया गया और रौलट एक्ट समाप्त करने का निर्णय लिया गया। विदेशी वस्त्रों को त्यागने का निर्णय लिया गया। 22-23 दिसम्बर को प्रिंस ऑफ वेल्स, पटना की यात्रा पर आया तो पूरे पटना में हड़ताल रहा। 1922 में गांधीजी की गिरफ्तारी

के विरुद्ध पटना में उसी वर्ष 28 मार्च को एक सभा की गई और गांधीजी को सहयोग देने का निर्णय लिया गया।

दिसम्बर 1924 में खादी प्रदर्शनी पटना में लगाई गई। यह एक गैर राजनीतिक आयोजन थी, जिसमें पटना हाई कोर्ट के तत्कालीन मुख्य न्यायधीश सर में सन मिलर और बिहार एक्जक्यूटिव के सदस्य सर मैक फरसन भी थे। श्रीमती मोलर ने इनाम बाँटा और इस अवसर पर खादी वस्त्र के पक्ष में राजेन्द्र प्रसाद ने काफी अच्छा भाषण दिया।

22-23 सितम्बर 1925 को अखिल भारतीय कांग्रेस समिति का अधिवेशन पटना में हुआ। यहाँ यह निर्णय लिया गया कि देश के हितों में कांग्रेस कोई भी कदम उठाने से बाज नहीं आएगी। पटना में ही अखिल भारतीय चरखा संघ का जन्म हुआ। 1921 में गांधीजी पटना आये। उनके विश्राम करने की व्यवस्था राजेन्द्र बाबू ने की। गांधीजी पटना में खुदा बख्श ओरियण्टल लाईब्रेरी देखने गये जिसकी लालसा उन्हीं के शब्दों में बहुत पहले से थी। इसके संस्थापक वकील खाँ बहादुर खुदाबख्श थे। गांधीजी को यात्रा में 50 हजार रुपया मिला। इसी समय पटना में राजेन्द्र बाबू ने सिन्हा इन्स्टीच्यूट में एक खादी प्रदर्शनी आयोजित की जिसमें गांधीजी ने भाषण दिया। खादी की एक प्रदर्शनी 19_6 में राजेन्द्र बाबू द्वारा बिहार यंग मैनस् इन्स्टीच्यूट में लगाई गई थी। जून 1926 में पटना कॉलेज से अर्थशास्त्र के छात्रों ने प्रो० सी० जे० एमिलटन के अवकाश ग्रहण करने के अवसर पर पटना में तैयार खादी वस्त्र भेंट की।

8 मई 19_7 को आधुनिक पटना मार्केट के सामने अंजुमन इस्लामिया कॉलेज में बिहार और उड़ीसा के मुसलमान प्रतिनिधियों की एक सभा हुई। इस सभा में मुसलमानों ने पृथक निर्वाचन प्रणाली का त्याग नहीं करने और सिंध का एक अलग प्रांत बनाने का निर्णय लिया। 16 नवम्बर 1927 को सर अली इमाम, सच्चिदानन्द सिन्हा और नवाब इस्माईल खाँ ने साइमन कमीशन के विरोध में हस्ताक्षर किये। साइमन कमीशन के विरोध में 9 दिसम्बर 19_8 को पटना में एक सम्मेलन हुआ जिनकी अध्यक्षता अनुग्रह नारायण सिंह ने की। 12 दिसम्बर 1928 को कमीशन पटना आया, जिसके विरुद्ध पटना में अद्वितीय प्रदर्शन हुए। दिसम्बर के बर्फीले ठंड में हार्डिंग पार्क के पास लगभग तीस हजार लोगों ने साइमन

के विरुद्ध काला झंडा दिखाया। पटना के कांग्रेस कमिटी के प्रयास से छुआ-छुत की कठोरता में कमी आई। एक दुसाद ने पटना में सत्यनारायण भगवान की कथा आयोजित की। इसमें अन्य जाति के लोग सम्मिलित हुए और प्रसाद लिया। 10 अगस्त 1929 को पटना में राजेन्द्र बाबू के नेतृत्व में **राजनीतिक पीड़ितदिवस** मनाया गया। 1929 में एसेम्बली भवन में बम-विस्फोट हुआ और पटना में भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त के चित्र बिकने लगे। पटना क्रान्तिकारी पार्टी के नेता श्री महीन्द्र नारायण राय ने अंग्रेजों के विरुद्ध संगठन को काफी मजबूत की। जनवरी 1929 में पटना में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन आयोजित हुआ। पटना के थियोसोफिकल हॉल में 4 दिसम्बर 1930 को नन्द किशोर लाल की पत्नी की अध्यक्षता में बिहार महिला का चौथा सम्मेलन आयोजित हुआ।

12 मार्च, 1930 को संध्या साढ़े पांच बजे भंवरपोखर और 8 बजे रात्रि में पटना सिटी के मंगल तालाब में स्वतंत्रता प्रेमियों की सभा हुई। छः हजार पुरुषों और लगभग सौ महिलाओं ने गांधीजी के नेतृत्व में पूर्ण विश्वास का निर्णय लिया। ब्रिटिश रवैया से असंतुष्ठ बिहार प्रांतीय कांग्रेस कमिटी की बैठक 30 मार्च 1930 को सदाकत आश्रम में राजेन्द्र बाबू की अध्यक्षता में हुई। 30 मार्च 1931 को भगत सिंह और उनके साथियों को फांसी दी गई और इसके विरोध में 26 मार्च 1931 को पटना बन्द रहा। उसी दिन शाम को श्रीकृष्ण सिंह और बाबू जगत नारायण लाल ने जनता के समक्ष पटना में क्रान्तिकारी भाषण दिया।

16 अप्रैल 1930 को पटना में नमक सत्याग्रह शुरू हुआ। इसकी शुरूआत मंगब तालाब से दो मील पूरब नखासपिंड नामक स्थान से हुई। इस सिलसिले में अम्बिका कांत सिंह और 19 अन्य स्वयंसेवक गिरफ्तार किये गये। आन्दोलनकारियों पर महेन्द्र मुहल्ला (पटना-6) के पास लाठी बरसाये गए। प्रोफेसर अब्दुल बारी, अनुग्रह नारायण सिंह और रामवृक्ष बेनीपुरी भी उस अवसर पर थे। राजेन्द्र बाबू इसी दिन पटना पहुँचे। पटना के जिलाधिकारी एवं आरक्षी अधीक्षक राजेन्द्र बाबू से मिले। पुलिस अत्याचार का विरोध हिन्दू और मुसलमान दोनों ने किया।

श्री हसन इमाम की पत्नी ने पटना के कई छात्र सभाओं का नेतृत्व किया। श्री इमाम की बेटी तथा कुछ अन्य महिलाओं ने 15 जुलाई 1930 को विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का अभियान चलाया। पटना में दो बार

महिलाओं ने प्रदर्शन किया। प्रधान प्रदर्शन में 3000 महिलाओं ने भाग लिया। हसन इमाम की पत्नी, बेटी तथा कुछ अन्य महिलाएं इस प्रदर्शन का नेतृत्व किया। श्री हसन की पत्नी, बेटी, श्रीमती विंध्यवासिनी देवी आदि महिलाओं को गिरफ्तार कर लिया गया। हसन इमाम की पत्नी को 200 रुपया और अन्य महिलाओं पर 100-100 रुपया जुर्माना किया गया। पटना में स्त्रियों का आंदोलन नहीं रुका।

जुलाई 1930 में सरकार ने पटना के कुछ प्रेसों को अंग्रेज-विरोधी साहित्य नहीं छापने की चेतावनी दी। सितम्बर 1930 में पटना के कैलास प्रेस पर छापा मारकर सरकार ने अंग्रेज विरोधी कागजात जब्त किये। क्रान्तिकारियों के प्रति सरकारी जेलों में हुए अत्याचारों के विरुद्ध 6 अगस्त 1930 को पटना में भारी उत्तेजना फैली। 26 जनवरी 1931 को आठ बजे सुबह भंवर पोखर पार्क में राजेन्द्र प्रसाद, ब्रज किशोर प्रसाद, अब्दूल बारिक, शंभूशरण शर्मा, फूलन प्रसाद वर्मा, और सारंगधर सिंह जैसे प्रभावशाली लोगों के समक्ष अनुग्रह नारायण सिंह ने राष्ट्रीय झंडा फहराया। इस अवसर पर अनेक लोग पकड़े गए जिनमें से कंचन मेहता, मखिन मेहता और सूर्या सिंह की मृत्यु पटना कैम्प जेल में हो गई।

यहाँ के अंग्रेजी समाचारपत्र सर्च लाईट पेप को जनवरी 1931 में 3 हजार रुपये की जमानत जमा करने के बाद-ही समाचार पत्र छापने की अनुमति मिली। 26 जनवरी 1931 को प्रो० एच० एन० दत्त (बिहार इंजिनियरिंग कॉलेज के प्रोफेसर)। विश्वेश्वर दे (खुदा बख्श लाइब्रेरी के सामने), बी० एन० कॉलेज का एक छात्र (भिखना पहाड़ी), टी० चक्रवर्ती (बिहारी सावलेन मुरादपुर), एस० एन० घोष (मुरादपुर स्थित भारत शिल्प मंदिर नामक दुकान) आदि घरों पर सरकार ने छापा मारकर अनेक क्रांतिकारी कागजातों को जब्त किया।

साम्प्रदायिक शांति बनाने के लिए करांची से 7 अप्रैल 1931 को लौटने के बाद राजेन्द्र बाबू ने साम्प्रदायिक शांति बनाये रखने का प्रयास किया। श्री मोहम्मद फखरुद्दीन, श्री सैयद अब्दुल अजीज, अली इमाम जैसे प्रमुख मुस्लिम नागरिकों से भेंट कर अब्दुल अजीज के आवाज पर एक सभा बुलाने की योजना बनाई गई। इसमें रायबहादुर राधाकृष्णन् जालान, राय ब्रजराजकृष्ण, श्री नन्द किशोर प्रसाद प्रसाद, श्री कुंअर नन्दन सहाय, श्री शंभू शरण वर्मा, श्री मथुरा प्रसाद जैसे प्रतिष्ठित हिन्दुओं ने भी भाग लिया। 3 जनवरी 1932 को सदाकत आश्रम में हो रही बैठक को

सरकार ने गैर-कानूनी बताया। राजेन्द्र बाबू और श्री कृष्णवल्लभ सहाय को छः-छः महीने की कठोर सजा मिली। साढे पांच महीने के लिए श्री जगतनारायण लाल और श्री मिश्र को कठोर सजा मिली। श्री ब्रजकिशोर प्रसाद और श्री मथुरा प्रसाद को पांच-पांच महीने की सजा सुनायी गई। पटना नगर कांग्रेस कार्यालय पर छापा मारकर पुलिस ने कई नौजवानों को गिरफ्तार किया। सर्चलाइट के प्रकाशन पर रोक लगा दी गई। इन सबके कारण पटना में कई हड़तालें हुई। सरकार के विरुद्ध 17 जनवरी 1932 को एक सभा मंगल तालाब पर आयोजित की गई।

6 नवम्बर 193[illegible] को सुरजपुरा के राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के नेतृत्व में आधुनिक पटना मार्केट के सामने अंजुमन इस्लामिया हॉल में छुआ-छूत पर एक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष प्रसिद्ध वैद्य पंडित व्रजबिहारी चौबे थे। राजेन्द्र प्रसाद भी सम्मेलन में उपस्थित थे। निम्न जाति के लोगों को ऊंचा स्थान देने का निर्णय लिया गया। 24 अप्रैल 1934 को गांधी जी ने पटना में हरिजन यात्रा शुरु की। 18-20 मई 1934 तक कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक पटना में रमना रोड पर स्थित पीली कोठी में हुई। गांधी जी के विचारों को समर्थन प्रदान करने का निर्णय इस बैठक में लिया गया। 6 वर्षों तक सरकारी प्रतिबन्ध के बाद बिहार राजनीतिक सम्मेलन का 19 वां अधिवेशन 15-16 को हुआ, जिसमें राजेन्द्र बाबू ने हिन्दु-मुस्लिम एकता की अपील की। पब्लिक सेफ्टिक बील के सम्बन्ध में बाबू श्री कृष्ण सिंह ने सरकारी नीति की कड़ी आलोचना की। 5 6 जनवरी 1937 को श्री जवाहर लाल नेहरु ने पटना प्रमण्डल के तीनों जिलों की यात्रा की। 1935 के संविधान के विरुद्ध पटना में पहली अप्रैल 1936 को एक सभा मंगल तालाब और दूसरी सभा कदम कुआं कांग्रेस मैदान में हुई। जयप्रकाश नारायण, बसावन सिंह राम-वृक्ष बेनीपुरी, शाह मुहम्मद हबीब, अनिसुल रहमान, अब्दुल बाकी, कमता प्रसाद और मंजुर अहसन जैसे समाजवादी नेताओं ने इस कानून के विरुद्ध जुलूस निकाला जिसे सरकारी बड़ी अस्पताल से आगे नहीं जाने दिया गया। इन सब प्रयासों के कारण 1935 के कानून में परिवर्तन हुए।

5 से 7 मई 1937 तक पटना के सदाकत आश्रम में राष्ट्रीय सुरक्षा सम्मेलन हुआ और मिडिल तथा हाई स्कूल स्तर के कुछ राष्ट्रीय स्कूल बिहार विद्यापीठ के अन्तगत खोले जाने का निर्णय लिया गया। 22 मई

1937 को यूथ क्लब की कार्यकारिणी की बैठक हुई जिसकी अध्यक्षता फूलन प्रसाद वर्मा ने की। कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति का पुनर्गठन 26 मई 1937 को किया गया। एक "मुस्लिम जनसंपर्क" की स्थापना की गई। 15 जुलाई 1935 को बांकीपुर मैदान में अब्दुल गफ्फार खां का भाषण हुआ। उन्होंने 20 जुलाई को इस्लामियां हॉल और 21 जुलाई को पटना सिटी के मदरसा मस्जिद और दानापुर में भाषण दिया। कांग्रेस में अधिक से अधिक मुसलमानों को भर्ती होने की सलाह गफ्फार खां ने दी।

पटना के समाजवादियों द्वारा 21 नवम्बर 1937 को यूथ लीग की कार्यकारिणी की बैठक फूलन प्रसाद वर्मा के नेतृत्व में की गई। बिहार यंग मैन्स इन्स्टीच्यूट में 20 दिसम्बर 1937 को अखिल भारतीय छात्र दिवस का अधिवेशन रामवृक्ष बेनीपुरी की अध्यक्षता में मनायी गई और छात्रों को राजनीति में भाग लेने का सलाह दी गई। श्री नकी इमाम की अध्यक्षता में दिसम्बर 1937 में एक छात्र संघ की स्थापना की गई। इस संघ के सचिव बने विश्वनाथ प्रसाद। एक समाजवादी ग्रुप क्लब की स्थापना के लिए जयप्रकाश नारायण ने पटना में कई सभाएँ की।

पटना से 1 जुलाई 1938 से **मुस्लिम लीग** नामक उर्दू पत्रिका का प्रकाशन शुरु हुआ। लीग के सदस्यों ने 26 अगस्त 1938 को फिलिस्तीन दिवस मनाया। साम्प्रदायिक दंगे भी हुए। 1-2 अक्टूबर 1938 को यहाँ अखिल भारतीय मुस्लिम एडुकेशन सम्मेलन का अधिवेशन हुआ और बिहार मंत्रिमण्डल की सुरक्षा नीति की आलोचना की गई। अखिल भारतीय मुस्लिम लीग का अधिवेशन 26 दिसम्बर 1938 को हुआ। इसके अध्यक्ष मुहम्मद अली जिन्ना और स्वागताध्यक्ष श्री अब्दुल अजीज थे। 29 दिसम्बर 1938 को अखिल भारतीय मुस्लिम छात्र सम्मेलन का आयोजन पटना में हुआ जिसका उद्घाटन जिन्ना और अध्यक्षता महमूदाबाद के राजा ने की।

12 मार्च 1939 को बिहार प्रांतीय मुस्लिम लीग सम्मेलन पटना में आयोजित हुआ। इस तरह पटना में मुस्लिम लीग के जलसे और सभाएँ पटना में आयोजित होती रहीं। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान 16 अक्टूबर 1939 को बिहार विधान सभा में प्रधान मंत्री श्री कृष्ण सिंह ने ब्रिटिश नीति का विरोध किया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का 53 वाँ अधिवेशन आयोजित करने के लिए कार्यकारिणी की एक बैठक 3 जनवरी, 1940 को

हुई। 15 जनवरी 1940 को सुभाषचन्द्र बोस पटना आए और जनता से अग्रगामी दल में सम्मिलित होने तथा स्वतंत्रता दिवस मनाने की अपील की। सरकार से अनुमति प्राप्त किये बिना पटना के छात्रों द्वारा आयोजित एक जुलूस का नेतृत्व रामवृक्ष बेनीपुरी ने की। इसके लिए उनपर मुकदमा चलाया गया। 28 फरवरी से 1 मार्च 1940 तक यहाँ कांग्रेस कार्य-कारिणी सभा की बैठक चलती रही। छात्रों की दो विशाल सभाएँ पटना में आयोजित हुई। 7 मार्च 1940 को जयप्रकाश नारायण ने वामपंथियों से एकता बनाये रखने की अपील की। जयप्रकाश नारायण को जमशेदपुर में गिरफ्तार किये जाने के कारण पटना में 10 मार्च को विरोध सभा और 14 मार्च को जयप्रकाश दिवस मनाया गया। मई, 1940 में पटना सदर अनुमण्डलाधिकारी के कार्यालय पर छात्रों ने राष्ट्रीय ध्वज फहराया और इम्पिरियल बैंक के अहाते में धरना दिया। 9 जून को यहाँ अग्रगामी दल की कार्यकारिणी की बैठक हुई। जुलाई, 1940 में **राष्ट्रीय गीतांजली** नामक एक हिन्दी पुस्तिका जब्त कर उसके प्रेस (यूनाइटेड प्रेस, पटना) को सरकार ने चेतावनी दी। 28 नवम्बर, 1940 को श्रीकृष्ण सिंह गिरफ्तार किये गये। अनुग्रह बाबू को पटना सिटी में गिरफ्तार कर लिया गया।

राजेन्द्र बाबू की अध्यक्षता में 24 अप्रैल, 1941 को पटना के साहित्य सम्मेलन भवन में एक सभा हुई और खादी प्रचार पर बल दिया गया। 1941 में प्रथम चरण में पटना में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच तनाव का वातावरण रहा जिसे कम करने में राजेन्द्र बाबू की भूमिका अति महत्वपूर्ण रही। पटना से प्रकाशित **मुस्लिम लीग** का 14 मई 1941 का अंक जब्त कर लिया गया क्योंकि इसमें साम्प्रदायिक भावना को उभारा गया था। 3 मई 1941 को तार देकर कि बिहार की स्थिति खराब थी, डाक्टर सच्चिदानन्द सिन्हा ने राजेन्द्र बाबू को बुलाया। प्रोफेसर बारी के नेतृत्व में राजेन्द्र बाबू ने कांग्रेस शांति दलों का संगठन किया। उपद्रवग्रस्त क्षेत्रों में शांति दल के सदस्य भेजे गए। सामुदायिक दुःभावना को समाप्त करने का प्रोफेसर बारी ने अथक परिश्रम किया। बिहार कांग्रेस समाजवादी दल ने 'मई दिवस' मनाने के लिए एक सभा का आयोजन 1 मई 1941 को बांकीपुर मैदान में की। इसके अध्यक्ष श्रमिक नेता शिवनाथ बनर्जी थे। इस दल को बदनाम करने का प्रयास अखिल भारतीय कांग्रेस समाजवादी दल के सचिव श्री पुरुषोत्तम विक्रम द्वारा किया गया। 20 अक्टूबर 1941 को बिहार प्रांत अग्रगामी दल की

कार्यकारिणी समिति की एक बैठक पटना में हुई। इसमें कांग्रेस की नरमनीति की आलोचना की गई।

दिसम्बर 1941 में अखिल भारतीय छात्र संघ के सातवें अधिवेशन की तैयारी पटना में की गई जो 27-28 दिसम्बर को हुआ। इस अधिवेशन का उद्घाटन अनुग्रह नारायण सिंह ने की। इससे पटना के छात्रों में एक नई जागरुकता आयी। अखिल भारतीय छात्र संघ के फारुकी गुट का अधिवेशन पटना में 31 दिसम्बर 1941 को हुआ।

30 जनवरी से 15 मार्च 1952 तक मौलाना अबुल कलाम आजाद पटना में रहे। उन्होंने जनता और छात्रों के बीच अंग्रेजों द्वारा किये जा रहे शोषण पर प्रकाश डाला। बिहार प्रांतीय कांग्रेस समीति की बैठक में भी वे सम्मिलित हुए। 5 फरवरी, 1942 को छात्रों के बीच समाजवादी नेता राममनोहर लोहिया का भाषण हुआ। 15-16 अप्रैल 1942 को बिहार प्रांतीय कांग्रेस समीति ने क्रिप्स योजना का विरोध किया और 30 अप्रैल को इस सम्बन्ध में पटना सीटी में अनुग्रह नारायण सिंह की अध्यक्षता में एक बैठक हुई। एक रक्षादल संगठित किया गया।

राजेन्द्र बाबू गिरफ्तार किये गए और पटना के छात्रों ने इस गिरफ्तारी के विरोध में बी० एन० कॉलेज से एक लम्बा जुलूस निकाला और पटना विश्वविद्यालय के मैदान में एक सभा का आयोजन सुरज देव की अध्यक्षता में की। इन छात्रों ने उसी दिन शाम को बाँकीपुर जेल के समक्ष संध्या छः बजे 15 मिनट तक नारेबाजी की। दूसरे दिन अर्थात् 10 अगस्त 1942 को पुलिस ने सदाकत आश्रम, किसान सभा ऑफिस, जिला कांग्रेस कार्यालय एवं बिहार विद्यापीठ के कार्यालय में ताला लगा दी। उस दिन पटना की सभी दुकानें, कॉलेज एवं स्कूल बन्द तथा यातायात ठप रही।

पटना युनिवर्सिटी लाइब्रेरी[1] के सामने लगभग 2000 छात्रों ने एक सभा आयोजित की। इस सभा का अध्यक्ष कृष्णा प्रसाद थे। इनके पिता जगतनारायण लाल पटना लॉ कॉलेज में संध्या कालीन प्राध्यापक थे। इस सभा के बाद छात्रों ने इन्जिनीयरिंग कॉलेज में राष्ट्रीय झण्डा फहरायी। छात्रों का जुलूस बाँकीपुर मैदान में किया गया। उस दिन बी०

1 आधुनिक युनिवर्सिटी लाइब्रेरी भवन के उत्तर में इस लाइब्रेरी का मुख्य भवन था और वर्तमान लाइब्रेरी भवन के स्थान पर मैदान था।

एन० कॉलेज, पटना ट्रेनिंग कॉलेज, सरकारी बड़ा अस्पताल, पटना साइंस कॉलेज, राममोहन राय सेमिनरी आदि में राष्ट्रीय ध्वज छात्रों द्वारा फहराया गया।

पटना सिटी के मंगल तालाब के पास छात्रों की सभा आयोजित हुई और पटना सिटी स्कूल के दो छात्र—श्री सिंह मिश्र एवं अवधबिहारी प्रसाद ने आन्दोलन तेज करने का निर्णय लिया।

दानापुर में भी छात्रों ने आन्दोलन किया, और स्थानीय तीनों स्कूल में राष्ट्रीय ध्वज फहराया।

बड़ा अस्पताल सुनसान हो चुका था। छात्र, नर्स, डाक्टर, कूली एवं मेहतर भी हड़ताल पर चले गए। राजेन्द्र बाबू के आग्रह पर ये लोग पुनः अपने-अपने कार्य पर लौटे और अस्पताल का कार्य सुचारु रूप से चलने लगा।

महिला चर्खा क्लब, कदम कुआँ से एक जुलूस निकाला और सिविल कोर्ट होते हुए कांग्रेस मैदान, कदम कुआँ पहुँचा। राजेन्द्र बाबू की बहन सुन्दरी देवी की अध्यक्षता में यहाँ एक सभा आयोजित की गई। इस सभा में मुख्य वक्ता शम्भू शरण वर्मा की पत्नी सुन्दरी देवी और जगत नारायण लाल की पत्नी रामप्यारी देवी थीं। इन दोनों महिलाओं ने पुरुषों को सरकारी पद से त्याग देने, वकालत छोड़ देने और पक्के इरादे के साथ अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतंत्रता प्रेमियों का साथ देने की सलाह दिया।

अगस्त, 1942 में पटना सिविल कोर्ट तक अनेक व्यक्तियों ने जुलूस निकाला और गिरफ्तार हुए। एल्फिंस्टन और रिजेन्ट सिनेमा पर पत्थर फेंके गए। सारे पटना में हड़ताल का वातावरण बना रहा। 'अगस्त में संध्या छः बजे एस० डी० ओ० कोर्ट और बड़ा अस्पताल के खुले मैदान में राष्ट्रीय ध्वज फहराया गया। गुलजारबाग के कॉलेज इन्डस्ट्रीज इन्सच्यूट में राष्ट्रीय ध्वज फहराने के समय 12 व्यक्ति गिरफ्तार किए गए। सीताराम केसरी एवं हरेकृष्ण सिन्हा के नेतृत्व में एक जुलूस पर पुलिस ने डंडा बरसाया और जुलूस समाप्त हो गया। खगौल में ऐसा ही हुआ।

"अगस्त 1942 को पटना की स्थिति काफी खराब हो गई। स्वतंत्रता संग्राम का यह ऐतिहासिक दिन रहा। बांकीपुर मैदान (गाँधी मैदान) के उत्तर-पूर्व में गोरखा सैनिक का कठोर प्रबन्ध होने के बावजूद

काफी संख्या में लोग एकत्रित हुए। पुलिस ने इसी भीड़ पर डंडों की बौछार कर दिया। काफी लोग गिरफ्तार किये गए। लोगों का उत्साह ठंडा नहीं पड़ा और देखते-देखते बांकीपुर गर्ल्स हाई स्कूल के पास एक बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गयी। पुलिस की लाठी से अनेक घायल हुए और नौ व्यक्ति गिरफ्तार किये गये।

पटना सचिवालय पर राष्ट्रीय झंडा फहराने के लिए 11 अगस्त को हजारों लोग पहुँचे और 2 बजे पूर्वी गेट से सचिवालय में प्रवेश करने का प्रयास किया। पटना के निहत्थे लोगों ने पुलिस की गोली से आधे घंटे तक मुकाबला किया। मौत की परवाह किये बिना लोग सचिवालय के भीतर प्रवेश करने में सफल हो गये और सवा दो बजे राष्ट्रीय ध्वज फहरा दिये। आई० जी० और डी० आई० जी० के आदेश से 4.57 में भीड़ पर गोलियाँ चलीं और सात छात्रों की मृत्यु घटनास्थल पर हो गई। काफी लोग घायल हुए। देश के लिए जिन सात छात्रों ने प्राण गंवाए उनके नाम उमा कांत प्रसाद सिन्हा (पिता, राम कुमार सिन्हा, ग्राम-नरेन्द्रपुर, दरौली, जिला-सारण या सिवान) जो राममोहन राय सेमिनरी स्कूल में नवम् वर्ग का छात्र था; रामानन्द सिंह (पिता, लक्ष्मण सिंह, ग्राम-महादेव नगर, मसौढ़ी, पटना) जो राममोहन राय सेमिनरी स्कूल में ग्यारहवें वर्ग का छात्र था; सतीश प्रसाद झा (पिता-जगदीश प्रसाद झा, ग्राम कड़हरा, पो० बांका भागलपुर) जो पटना कॉलेजियट स्कूल में ग्यारहवें वर्ग का छात्र था; जगपति कुमार (पिता सुखराम बहादुर ग्राम करपी, पो० ओबरा, गया) जो बी० एन० कॉलेज में द्वितीय वर्ष का छात्र था; देवी पद चौधरी (पिता, देवेन्द्रनाथ चौधरी, ग्राम जमालपुर, पो० विश्वनाथ सिलहट) जो मिलर हाई इंग्लिश स्कूल, पटना में नवम् वर्ग का छात्र था; राजेन्द्र सिंह (पिता, शिव नारायण सिंह, ग्राम बनवारीचक पो० सोनपुर, सारण) जो पटना हाई इंग्लिश स्कूल में मैट्रिक का छात्र था और रामगोविन्द सिंह (पिता, देवकी सिंह, ग्राम-दशरथ, पो० फुलवारी, पटना) जो पुनपुन हाई स्कूल का छात्र था। पचास छात्रों को पुलिस ने बांकीपुर जेल में नजरबन्द कर दिया।

सचिवालय के पास हुई उपर्युक्त स्वतंत्रता प्रेमियों द्वारा दिये गए इन बलिदान की खबर पांच मिनट के अन्दर आग के समान सारे पटना में फैल गई। देखते-देखते हिन्दुओं और मुसलमानों की सभी दुकानें विरोध

के रूप में बन्द हो गई। सारे शहर में गर्म हवा बहने लगी। गर्दनीबाग के इलाके में डी० पी० त्रिपाठी के नेतृत्व में सचिवालय के सभी क्लर्कों एवं चपरासियों ने इस घटना के विरुद्ध एक जुलूस निकाला। बड़ा अस्पताल के अहाते में एक विशाल जनसभा आयोजित की गई और सरकार के खूनी कारनामों के विरुद्ध आवाज उठायी गई।

12 अगस्त, 1942 को प्रात: काल राममोहनराय सेमिनरी स्कूल में एक शोकसभा आयोजित हुई। उसी दिन सुबह पटना कॉलेज के आहाते से सारे शहीदों की लाश को लेकर एक बहुत बड़ी भीड़ मुख्य मार्ग से गोलकर, श्मशान घाट पहुँची। हजारों लोगों की उपस्थिति में दाह-संस्कार किया गया। पटना के सभी संस्थानों के छात्रों ने हड़ताल कर दिया। सभी दुकानें, रिक्शा, टमटम आदि बन्द रहे। बिहार प्रान्तीय कांग्रेस समिति के प्रधान सचिव सत्यनारायण सिन्हा और सारण जिला कांग्रेस समिति के अध्यक्ष महामाया प्रसाद जंक्शन पर गिरफ्तार कर लिए गए। सरकार विरोधी नारों से पटना गुंज उठा। पटनासिटी से दानापुर तक 13 अगस्त, 1942 को 144 लगा दिया गया। आंदोलन को दबाना मुश्किल था। कदम कुँआ और नया टोला के डाकघरों को नष्ट कर दिया गया। कदम कुँआ में पुलिस से भरी एक गाड़ी को आंदोलनकारियों ने जला दिया। नगरपालिका भवन नष्ट कर दिए गए, रेलवे लाइनें उखाड़ दी गई।

13 अगस्त को सरकारी आदेश से पटना के सभी कॉलेज बन्द कर दिए। सरकार के आदेश से कॉलेजों के सभी प्रधानाध्यापकों ने छात्रावासों से लड़कों को निकाल दिया। बाहर से सेना बुलाई गई। पुलिस की लाठी से 14 अगस्त 1942 को बहुत लोग घायल हो गए। पटना अंग्रेजों का सैनिक शिविर बन गया! सरकारी नौकरों को परिचय पत्र दिखाकर अपने-अपने विभागों में जाना पड़ता। सरकारी सेना पर आक्रमण करने के प्रयास किए गए और काफी लोग इसके कारण गिरफ्तार किए गए। 21 अगस्त 1942 को छविनाथ पांडेय सचिव, हिन्दी साहित्य सम्मेलन और ब्रज नन्दन आजाद के अलावे सरकारी रेकर्ड के अनुसार 353 लोग बन्दी बनाए गए। खादी भण्डार के कार्यालय पर छापा मारकर पुलिस ने अंग्रेज विरोधी सखीचन्द अग्रवाल को गिरफ्तार किया। 22 अगस्त को पटनासिटी में क्रांतिकारी कुलदीप तेली को बन्दी

बना लिया गया। कांग्रेस सदस्य राम प्रसाद और कैलाश भगत को गिरफ्तार किया गया। फारवर्ड ब्लाक के नेता रामचन्द्र शर्मा को 31 अगस्त 1942 को गिरफ्तार किया गया।

9 सितम्बर 1942 को पटना के स्कूल खुले और 15 सितम्बर से पुनः लड़कों का क्रान्तिकारी वातावरण बना। रेल का समय पर आना और डाक का समय पर मिलना गड़बड़ा गया। **करो या मरो** के नारे से पटना गुंज उठा।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम गुलामी की जंजीरों को तोड़ने की स्थिति में था। इसके लिए भारत घोर संकटों का मुकाबला कर रहा था। बिहार भी अछूता नहीं था। 26 जनवरी 1943 को यहाँ भी स्वतंत्रता दिवस मनाया जाता। पटना कैम्प जेल में स्वाधीनता दिवस मनाने के लिये उत्साहित कैदियों पर पुलिस ने लाठियों की वर्षा की। श्रीमती सुचेता कृपलानी 20 या 21 मार्च को पटना आकर कांग्रेस के कामकाज में भाग लिया।

वायसराय लार्ड लिनलिथगो से कुछ पत्राचार के पश्चात् गांधी जी 10 फरवरी से 21 दिन का अनशन करने को घोषणा की। देश भर में इससे उत्तेजना फैल गई। गाँधीजी की आयु इस समय लगभग 73 वर्ष हो चुकी थी। उनका अनशन अखबारों के सम्पादकीय एवं सूचना का प्रमुख विषय बना रहा। 16 फरवरी, 1943 को पटना के **बिहार हेराल्ड** और 19 फरवरी को पटना के **योगी** समाचार पत्रों ने गांधीजी के अनशन पर गहरा दुःख प्रकट किया। गांधीजी को जेल से नहीं छोड़ने के कारण 27 फरवरी 1943 को **योगी** ने सरकारी नीति की आलोचना की।

जब गांधीजी का अनशन समाप्त हुआ तो **एक कांग्रेस समाचार** की सायक्लोस्टायल प्रति पटना में बांटी गई। इसमें गांधीजी को सत्य और अहिंसा का अवतार बताया गया। 14 मार्च 1943 को सर्चलाईट से प्रतिबन्ध हटा दिया गया। इस समाचार पत्र में गांधीजी की रिहाई जनता और सरकार दोनों के हित में बताया गया। 9 अप्रैल 1943 से **इण्डियन नेशन** और 10 अप्रैल से **आर्यावर्त** का प्रकाशन होने लगा। 6 से 13 अप्रैल 1943 तक **राष्ट्रीय सप्ताह दिवस** मनाया गया। पटना में जुलूस निकाली गई, राष्ट्रीय झण्डे फहराये गए, मजदूर दिवस, भारत छोड़ो आंदोलन, अनशन दिवस, छात्र दिवस, एवं शहीद दिवस मनाये गए। मई, 1943 में श्री श्यामसुन्दर प्रसाद, सूर्यनाथ चौबे, श्री शिवनन्दन

प्रसाद मण्डल, रामबिलास नारायण चौधरी, अनिरुद्ध कुमार सिन्हा, राजकिशोर प्रसाद सिन्हा आदि का एक गुट बना जो स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अनेक बाधाओं के बावजूद छिपकर काम करते। कांग्रेस के रचनात्मक कार्यों में उनका विश्वास नहीं था। इन लोगों को गांधी जी में विश्वास था।

गाँधी जी से जेल में मिलने के लिए कुछ नेताओं ने वायसराय के पास प्रार्थना पत्र दिया लेकिन उनका अनुरोध अस्वीकृत कर दिया गया। 7 अप्रैल 1943 को **सर्चलाईट** ने इस सरकारी नीति की आलोचना की। 10 अप्रैल 1943 को पटना के **इण्डियन नेशन** ने लिखा—भारत के प्रांतों में दीर्घकाल तक प्रतिनिधि शासन का पुनर्स्थापन नहीं होगा क्योंकि नौकरशाही शासन ऐसा नहीं चाहती।[1]

सरकार की दमन नीति बरकरार रही। 27 अप्रैल 1943 को दानापुर में जुलूस निकलने के कारण तीन महिलाओं को तीन-तीन महीने का कारावास मिला। इसका विरोध पटना के समाचार पत्रों ने किया। गाँधी जी के आमरण अनशन की खबर **सर्चलाईट** एवं योगी में छपी। खाद्यान्नों की कमी से पटना के बाहर भी स्थिति खराब होने लगी थी। पुलिस अत्याचार और राजनीतिक बन्दियों की स्थिति पर पटना के समाचार पत्रों ने टीका-टिप्पणी की। बिहार विधानसभा के कुछ सदस्यों ने मंत्रिमण्डल बनाने की योजना बनाई जिसकी कड़ी आलोचना 28 मई 1943 को सर्चलाईट में हुई। **अगस्त क्रान्ति** की वर्षगांठ की तैयारी पटना में होने लगी थी जिसकी जानकारी सरकार को जुलाई 1943में मिली। अगस्त क्रान्ति के अन्तर्गत गांधीजी से पुनः जेलमें मिलने, पटना जेल के समक्ष हड़ताल करने और छात्रों द्वारा काला झण्डा दिखाने आदि की योजना बनी।

1 अगस्त 1943 को सशस्त्र पुलिस का इन्तजाम पटना में रहा। 7 अगस्त को सनसनीखेज समाचार नहीं छापने का सरकारी आदेश समाचार पत्रों को दिया गया। 13 अगस्त 1943 की रात में शिवनन्दन प्रसाद मण्डल एवं श्यामसुन्दर प्रसाद नामक दो प्रमुख कांग्रेसी कार्यकर्त्ता गिरफ्तार किये गए। 3 सितम्बर 1943 को पटना जिला के तत्कालीन अधिनायक रामस्वरूप सिंह पटना सिटी में पकड़ लिये गए।

---

1. के० के० दत्त बिहार में स्वतंत्र आन्दोलन का इतिहास (हिन्दी) भाग—3 पटना, 1975, पृ० 275-90

2 अक्टूबर 1943को पटना के मंदिरों, मस्जिदों, घरों और सार्वजनिक स्थानों पर 8 बजे सवेरे प्रार्थना की गई। संध्या की वेला में गांधीजी की जयन्ती मनाई गई। 3 अक्टूबर को पटना के स्कूल एवं कॉलेज के छात्रों ने राष्ट्रीय ध्वज फहराया और दिनभर हड़ताल का वातावरण रहा।[1] गांधी जी की तस्वीर के साथ रात्रि में छात्रों ने मशाल जुलूस निकाला। 4 अक्टूबर 1943 को अंग्रेजों का पूर्ण बहिष्कार किया गया। 5 अक्टूबर को 'करो या मरो" के बिल्ले पटना की स्त्रियाँ लगायीं। 1 अक्टूबर को पटना की दूकानें, कारखाने, कार्यालय एवं शिक्षा संस्थान बन्द रहे। इन दिनों सरकार का रूख काफी कड़ा रहा। 8 दिसम्बर को पटना में राजेन्द्र बाबू का जन्मदिन मनाया गया।

परम्परागत ढंग से पटना में 26 जनवरी 1944 को स्वाधीनता दिवस मनाया गया। इस दिन कई लोग गिरफ्तार किये गए। सर्चलाईट ने स्वाधीनता दिवस प्रतिज्ञापत्र तथा श्रीमती सरोजनी नायडू के भाषण एवं अपील पर सरकार द्वारा प्रतिबन्ध लगाये जाने की आलोचना की। 17 फरवरी 1944 को लार्ड वावेल ने कांग्रेस नीति को अव्यवहारिक बताया। पटना के अनेक समाचार पत्रों ने लार्ड वावेल की आलोचना छापी। 4 फरवरी 1944 को पटना में उर्दू दिवस मनाया गया। 23 मार्च को लीग ने पटना में पाकिस्तान दिवस मनायी। भारत और पाकिस्तान के बंटवारे को लेकर पटना में एक तनाव की स्थिति बनी थी। 1944 में गांधीजी गम्भीर रूप से बीमार पड़े। इसके लिए पटना में एक नवीन तनावपूर्ण वातावरण बना। अनेक कांग्रेसी कार्यकर्त्ता गिरफ्तार किये गए। पटना में 28 अप्रैल 1944 को श्रीमती कृपलानी की गिरफ्तारी हुई। 6 मई 1944 को गांधीजी जेल से रिहा हुए। इस अवसर पर पटना में रायबहादुर श्यामनन्दन सहाय की अध्यक्षता में एक सभा हुई। इसमें जवाहरलाल नेहरू को रिहा करने एवं कांग्रेस मंत्रिमण्डल बनने देने के पक्ष में प्रस्ताव पास हुए। 15 जून को पटना में गांधी दिवस मनाया गया। पटना कैम्प जेल में सूर्यनाथ चौबे सहित कुछ राजनैतिक बंदियों ने भोजन करने से इन्कार किया।

---

1. वही

जेल से छूटने पर अनुग्रह नारायण सिंह ने अखबारों में हैजा तथा मलेरिया पर कुछ लेख प्रकाशित किये। महामारी पीड़ित क्षेत्रों में उन्होंने राहत कमिटी का संगठन किया। बाबू श्री कृष्ण सिंह भी इन कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे। 9 अगस्त 1944 को अगस्त जयन्ती मनाई गई और सात व्यक्ति पटना में गिरफ्तार हुए। दिसम्बर में राजेन्द्र बाबू का जन्मदिन मनाया गया।

16 जनवरी 1945 को बिहार रचनात्मक कार्यात्मक सम्मेलन आधुनिक पटना मार्केट के सामने अंजुमन इस्लामिया हॉल में प्रोफेसर अब्दुल बारी ने आयोजित की। इस सम्मेलन में रचनात्मक कार्यक्रम के लिए एक परामर्शदातृ समिति का गठन हुआ। श्रीबाबू, अनुग्रह बाबू, श्री मुरली मनोहर प्रसाद, पण्डित प्रजापति मिश्र और प्रोफेसर अब्दुल बारी इस समिति के सदस्य बने।[1]

13 फरवरी 1945 को अनुग्रह बाबू दो घंटे तक बिहार के गर्वनर से बातचीत की और बताया कि पंडित प्रजापति मिश्र सविनय अवज्ञा को प्रोत्साहित करने को इच्छुक नहीं थे लेकिन गर्वनर को संतुष्टि नहीं हुई। 27 फरवरी को कांग्रेसी लोगों की एक सभा पटना में हुई और महात्मा गाँधी के पन्द्रह सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम में पूर्ण विश्वास व्यक्त की गई। इस बैठक में स्वराज हासिल करना निश्चित बताया गया। सरकार की गलतफहमी को दूर करने का प्रयास किया गया।[2]

30 जून, 1945 को अनुग्रह बाबू का सर्चलाइट में एक लेख छपा जिसमें पुलिस अत्याचार की आलोचना की गई। बिहार प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी, पटना ने 1 अगस्त के लिए एक ठोस कार्यक्रम तैयार किया। 24 दिसम्बर को जवाहरलाल नेहरू, श्री अंसार हरवानी और हरिविष्णु कामथ पटना पहुँचे। हजारों लोगों ने उनका स्वागत किया। डा० सच्चिदानन्द सिन्हा के मकान पर उन्हें ले जाया गया। "जयप्रकाश को रिहा करो" रैली के समक्ष जवाहरलाल नेहरू ने भाषण दिया। आजाद हिन्द फौज के मुकदमों और आगामी चुनाव में कांग्रेसी प्रत्याशियों को समर्थन करने का नेहरू ने आग्रह किया। इस सभा में राजेन्द्र बाबू ने भी

---

1. वही पृ० 300-310
2. वही पृ० 313

जयप्रकाश नारायण एवं अन्य राजनैतिक बंदियों की रिहाई की मांग की। पटना के छात्रों के अनुरोध पर नेहरू जी **स्टूडेंट कल्चरल कॉटेज** गये। उन्होंने बिहार छात्र कांग्रेस का उद्घाटन किया। बांकीपुर मैदान में आम लोगों के समक्ष उन्होंने भाषण दिया। इस सभा मे लगभग एक लाख लोग थे।

कुछ दिनों तक चुनाव का माहौल पटना में बना रहा। जनवरी, 1946 में कांग्रेस संसदीय परिषद् ने प्रांतीय विधान सभा के लिए अपने प्रत्याशियों का मनोनयन किया। मुस्लिम निर्वाचन मण्डल से दो प्रमुख राष्ट्रवादी मुसलमान डाक्टर सैयद महमूद और प्रोफेसर अब्दुल बारी मनोनीत किये गए। मुस्लिम लीग के प्रत्याशियों में श्रीमती इमाम और अमीन अहमद सम्मिलित थे। श्रीकृष्ण सिंह और अनुग्रह नारायण सिंह प्रान्त का दौरा कर रहे थे। 30 मार्च 1946 को बिहार गवर्नर ने विधान सभा में कांग्रेसी दल के नेता को मंत्रिमन्डल बनाने को आमंत्रित किया। प्रांत का दूसरा कांग्रेसी मंत्रिमण्डल गठित हुआ। श्रीकृष्ण सिंह, श्री अनुग्रह नारायण सिंह और डाक्टर सैयद महमूद ने शपथ ग्रहण किया। जेल से रिहा होने पर श्री जयलाल चौधरी मंत्री बने। रामचरित्र सिंह, बदरी नाथ वर्मा, कृष्ण वल्लभ सहाय, विनोदानन्द झा और अब्दुल कयूम अंसारी को मंत्रिमंडल में सम्मिलित किया गया।[1] अप्रैल 1946 में जयप्रकाश नारायण रिहा कर दिये गये। पटना में उनका भव्य स्वागत हुआ।

पटना के **सर्चलाइट, इण्डियन नेशन, आर्यावर्त्त** एवं **राष्ट्रवाणी** में अंग्रेजी सरकार के "कथनी और करनी" पर आलोचनात्मक लेख छपे। 5 मार्च 1947 की सुबह[2] गांधी जी नोआखाली से पटना आये। 6 मार्च को होली के दिन उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता की अपील की। 11 मार्च को उन्होंने इस विषय पर पुनः भाषण दिया और 12 मार्च को कुम्हार देखने गये। यहां मुसलमानों की सम्पत्ति लूट ली गई थी। शाम को उनका भाषण मंगल तालाब, पटना सिटी में हुआ।

28 मार्च 1947 को पुलिस की अनजान गोली से प्रोफेसर बारी की मृत्यु हो गई। 29 मार्च को गांधी जी घर जाकर बारी परिवार के सदस्यों

1. वही पृ० 310-20
2. वही 335

से भेंट किये और अपनी संवेदना व्यक्त की। अप्रैल में गांधी जी पुनः पटना आये और बांकीपुर मैदान में 14 अप्रैल को एक प्रार्थना सभा में उन्होंने दिल्ली में वायसराय से अपनी बातचीत का उल्लेख किया। 15 मई को पटना आकर गांधी जी ने प्रार्थना सभाओं का क्रम फिर से शुरू किया। विस्थापितों की सावधानी एवं सहानुभूति के साथ देखरेख करने का आग्रह उन्होंने पटनावासियों से किया।

14 मार्च 1947 को लार्ड माउन्टबेटन वायसराय के पद पर बैठे। 3 जून, 1947 को उनकी एक योजना प्रकाशित हुई जिसमें भारतीयों के हाथों में सत्ता हस्तान्तरण की योजना थी। अनिच्छापूर्वक, अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी ने इस योजना को स्वीकार लिया। 15 अगस्त 1947 को भारत पूर्णतः स्वाधीन हो गया। स्वतंत्रता समारोह बड़े उत्साह के साथ पटना में मनाया गया। इस समय श्री जयरामदास दौलतराम बिहार के राज्यपाल थे। 14-15 अगस्त की अर्द्धरात्रि में उन्होंने इस पद की शपथ ली। जो छात्र 1942 के अगस्त गोलीकाण्ड में शहीद हुए उनकी स्मृति में शहीद स्मारक की आधारशिला उन्होंने रखी। प्रांतीय कांग्रेस कमिटी के अध्यक्ष श्री महामाया प्रसाद सिन्हा के नेतृत्व में स्वतंत्रता दिवस समारोह मनाया गया। मुस्लिम लीग ने अनेक स्वतंत्रता समारोहों में भाग लिया।

आबादी

बुकानन के अनुसार 1807-14 में, पटना की आबादी लगभग 3,12,000 थी। 1837 में पटना की आबादी 284,132 एच॰ बेवरल के अनुसार थी। 1872 में प्रथम जनगणना के अनुसार यहाँ की आबादी 1,58,900 और 1881 में 1,70, 654 और 1891 में 165,192 थी। पटना की आबादी 1901 में 1,34,785, 1911 में 1,36,153, 1921 में 1,19,976, 1931 में 1,59,690, 1941 में 1,96 415, 1951 में 2,83, 479, 1961 में 3,64 594, 1971 में 4 75, 300 और 1981 में 8,13,963 थी। 1911 ई॰ की तुलना में पटना की आबादी में 11.88 प्रतिशत की कमी की बात पाते हैं। इसका प्रथम कारण यह बताया जाता है कि असहयोग आन्दोलन का वातावरण रहने से सही गणना नहीं हो सकी। दूसरा कारण चेचक एवं हैजा जैसी जानलेवा बिमारियाँ बताया जाता है।[1]

---

1 डा॰ आर॰ बी॰ राम, "ग्रोईंग सिटी ऑफ पटना" सायन्स कॉलेज पत्रिका, पटना यूनिवर्सिटी, पटना, 1984-85, पृ॰ 12-17.

अध्याय – 10

पटना के कुछ नामों की सार्थकता एवं स्मारकें

मिटन घाट, पटना सिटी

डचों द्वारा अधिकृत एक मुहल्ला पटना सिटी में **मिटन घाट** के नाम से जाना जाता है। यह नाम इसलिए पड़ा कि यहां **शाह मिटन की दरगाह** है।

बलन्देज का पुश्त, पटना सिटी

आज **मिटन घाट** मुहल्ले का नाम **बलन्देज का पुश्त** कहलाता है। हालेण्ड का बिगड़ा रूप बलन्देज है। यहां डच व्यापारियों ने अपना अड्डा स्थापित किया और एक कोठी बनवायी। डचों के क्षेत्र पर बाद में किसी व्यक्ति ने अधिकार कर लिया।

गुलजारबाग प्रेस पटना सिटी

गुलजारबाग (वैसा बगीचा जहां काफी शोरगुल, चहल-पहल और रोशनी हो) में अंग्रेजों द्वारा बंगाल के बाजार पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए पटना सिटी के गुलजारबाग मुहल्ले में गंगा नदी के किनारे एक व्यापारिक कोठी 1620 में बनवाया गया। इस कोठी का मुख्य द्वार गंगा नदी की ओर था। मुख्य सड़क के तरफ से यह कोठी ऊंची दीवारों से घिरी थी। पटना से अंग्रेज शोरा प्राप्त करते। अंग्रेजों द्वारा निर्मित इसी कोठी में आज सरकारी प्रेस है और यह मुहल्ला गुलजारबाग प्रेस के नाम से जाना जाता है। यहां से व्यापारिक कोठी अंग्रेज जनरल बारकर के नेतृत्व में [illegible] इलाके में स्थापित की गई वह बारकर साहब के कारण **बाकरगंज** के नाम से आज भी जाना जाता है। बारकर साहब द्वारा स्थापित कोठी का अफीम-कारखाने के रूप में 1910 तक प्रयोग होता रहा।

मदरसा मुहल्ला पटना सिटी

चौक पुलिस स्टेशन, पटना सिटी के उत्तर में स्थित इस मुहल्ले का नाम सैफ खां द्वारा 18वीं शताब्दी में स्थापित मदरसा के नाम पर पड़ा।

यह भवन दो मंजिला और इसमें कुछ शिक्षकों एवं छात्रों के रहने की भी व्यवस्था थी।

मालसलामी, पटना सिटी

पटना सिटी में स्थित चुंगीकर कार्यालय या कारवाँ सराय का नाम मालसलामी पड़ा। सलामी या टैक्स के रूप में व्यापारियों को अपने माल के बदले एक निश्चित रकम (माल) देना पड़ता था।

नगरा मुहल्ला, पटना सिटी

मालसलामी मुहल्ला के दक्षिण में स्थित **नगला** या **नगरा** मुहल्ला 'नगरम्' से बना है। कहते हैं, अजातशत्रु ने सर्वप्रथम यहीं चारदीवारी वाला एक नगर बसाया था।

बागजफर खां, पटना सिटी

नगरा मुहल्ला से सटे **बागजफर खां** मुहल्ले का नाम नवाब जफर खां के नाम पर पड़ा। 16:1 ई० में जफर खां बिहार का राज्यपाल शाहजहां द्वारा नियुक्त किया गया था। गर्मी के दिनों में आराम से रहने के लिए उसने जहाँ एक बाग/तालाब और झरना से घिरे **बिरादरी** नामक भवन बनवाया वह नौकरों-चाकरों एवं छोटे-बड़े अधिकारियों आदि के कारण मुहल्ला का रूप ले लिया और आज भी जफर खां के नाम पर बागजफर खां मुहल्ला के नाम से जाना जाता है।[1]

महाराज घाट और रौजा मस्जिद

मच्छिहाटा, पटना सिटी

ख्वाजा कलां के पुरब में आगे बढ़ने पर मुख्य सड़क के उत्तरी हिस्से में राजा राम नारायण का किला है। इस किला से सटे हुए घाट का नाम किला के कारण महाराज घाट हुआ। इस किले का एक हिस्सा आज भी देखा जा सकता है। इस किले के पास रौजा मस्जिद स्थित है। इसका निर्माण 17 वीं शताब्दी में हुआ। इसका नाम रौजा मस्जिद इस लिए पड़ा क्योंकि इसके अहाते में ताज एवं मंगल नामक दो सूफी संतों

---

1 विस्तृत जानकारी के लिए देखें, कयामुदीन अहमद, पूर्वोद्धृत

के मकबरे या रौजे बने हैं। इस मस्जिद की दूसरी विशेषता यह है कि इसका निर्माण औरंगजेब के फरमान से जल्दी-जल्दी 1667-68 में किया गया। इस मस्जिद में उपलब्ध अभिलेख में मुगलकालीन प्रसिद्ध बादशाह औरंगजेब का नाम एक बादशाह के रूप में नहीं बल्कि निर्माण कर्त्ता के रूप में खुदा है।

चौक पटनासिटी चिहल खुतुन (40 खंभों पर निर्मित राजभवन), मदरसा मुहल्ला में स्थित इस **भवन** को 1748 की विद्रोह में काफी क्षति पहुँची। इस राजभवन को बाद में **कोलादारी महल** कहा गया, जो वर्त्तमान पटना सिटी, रेलवे स्टेशन तक फैला है। इस राजभवन का एक छोटा-सा हिस्सा प्रसिद्ध उद्योगपति, धर्म प्रचारक एवं ऐतिहासिक सामग्रियों का संग्रह कर्त्ता स्वर्गीय राजा कृष्ण जालान द्वारा इस राजभवन का एक छोटा-सा हिस्सा प्राप्त किया गया और उसे ठीक से बनाया गया जो आज किला के नाम से जाना जाता है।

नेपाली कोठी

जालान किला से सटा **नेपाली कोठी** है। इस कोठी का मालिक पहले कैप्टेन एलेक्जेन्डर हार्डी था। उसने नेपाली सरकार से अपना कोठी 1731 में संभवतः 1601 रुपये में बेच दिया। गया और बोध गया जाने वाले नेपाली तीर्थ यात्रियों का यह कोठी विश्राम स्थल है। नेपाली सरकार का व्यापारिक कोठी के रूप में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

तख्त-ए-हरमंदिर (सिक्ख मंदिर), पटना सिटी : सिक्खों का प्रसिद्ध तीर्थ स्थल के रूप में प्रसिद्ध हरमंदिर जिस गली में स्थित है वह पहले कुचा-ए-फारुख खान अली के नाम से, लेकिन अब हरमंदिर को गली के नाम से जाना जाता है। दसवें एवं अन्तिम गुरु **गुरु** गोविन्द सिंह का यह जन्म स्थान है। सिक्ख धर्म से संबंधित अनेक बहुमूल्य सामग्रियों के अलावे गुरु गोविन्द सिंह के हस्ताक्षर के साथ **ग्रन्थ साहब** की एक प्रति है। हरमंदिर के भवन को महाराणा रणजीत सिंह के समय से लेकर बाद के सैकड़ों वर्षों के बीच अनेकों बार विस्तृत और उसके आकार प्रकार में परिवर्तन किया गया। इस भवन की विस्तृत जानकारी प्रथम बार चार्ल्स विल्किंस ने 1781 ई० में दी। बाद में **बुकानन** ने भी इस पर प्रकाश डाला। 1934 के भूकम्प में इस भवन को काफी छति पहुँची। संगमरमर से इस भवन को 1957 में तैयार किया गया।

बड़ी पहाड़ी और छोटी पहाड़ी, पटना सिटी

सिटी के दक्षिण-पूर्व में स्थित **बड़ी और छोटी पहाड़ी** नामक मुहल्ले का नाम उन बौद्ध स्तूपों के कारण पड़ा जिन्हें कहते हैं, अशोक मौर्य ने बनवायी थी।

अगमकुंआ, पटना सिटी

पटना सिटी रेलवे स्टेशन के दक्षिण-पश्चिम में स्थित **अगमकुंआ** मुहल्ला नाम उस कुएँ के नाम पर पड़ा जिसे मौर्य सम्राट् अशोक ने मृत्युदंड देने के लिए बनवाया।

मठनिश, पटना सिटी

पटना सिटी में किलदारी मुहल्ला से सटा मुहल्ला **मठनिश** कहलाता। वहाँ कोई मठ का प्रमाण नहीं लेकिन प्राचीन काल में बौद्ध स्तूप थे। इस मुहल्ले में मोमिन मुसलमानों के कब्रगाह हैं।

बाकरगंज, पटना

गाँधी मैदान से पूर्व में घनी आबादी और सड़क के दोनों ओर सोने चाँदी की 50 से अधिक दुकानों वाला मुहल्ला आज बाकरगंज के नाम से जाना जाता है। इस मुहल्ले को अंग्रेज कप्तान रोबर्ट बाकर ने 1766 ई० में बसाया। आधुनिक गवर्नमेंट प्रेस से अंग्रेजों का व्यापारिक कार्यालय रोबर्ट बार्कर की देखरेख में यहाँ स्थापित किया गया। आधुनिक उमा सिनेमा से सटे पश्चिम से लेकर आधुनिक हथुआ मार्केट से सटे पूर्व-दक्षिण में अंग्रेजी कोठी एवं अन्य भवनों का अवशेष देखा जा सकता है।

गोलकपुर मुहल्ला, महेन्द्रू, पटना -800 006

पटना लॉ कॉलेज के पश्चिम में गोलकपुर मुहल्ला है जिसके नाम-करण के सम्बन्ध में भूगर्भशास्त्र विभाग, पटना विश्वविद्यालय के भूतपूर्व अध्यक्ष एवं भूतपूर्व कुलपति प्रोफेसर आर० सी० सिन्हा का मानना है कि इस इलाके में मौर्यों के समय गोल-गोल सिक्के ढाले जाते थे। कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि बुलाकशाह नामक एक पगला फकीर के नाम पर इस मुहल्ले का नाम गोलकपुर पड़ा। बुलाक शाह को इस इलाके में अकेले से बातचीत करते और इधर-उधर घूमते देखा जा सकता था।

भिखना पहाड़ी, पटना-5

पटना कॉलेज के दक्षिण निचली सड़क पर स्थित भिखना पहाड़ी भिक्षु शब्द से बना है। मौर्य काल में यहाँ बौद्ध मठ थे जिसमें बौद्ध भिक्षु रहते थे। यहाँ भिखना कुंआ देवी की पूजा निम्न जाति के हिन्दुओं द्वारा की जाती थी।

रमना रोड़ मुहल्ला, पटना-5

बौद्ध भिक्षुओं द्वारा जिस हरे-भरे बाग में टहला या रमण किया जाता वह इलाका रमण-रोड का अपभ्रंश रमना-रोड हो गया। इस क्षेत्र को अंग्रेजों ने मनीरुल्ला नामक नवाब को दिया जो शाह आलम द्वितीय का मंत्री था। मनीरुल्ला की मदद से अंग्रेजों ने शाह आलम द्वितीय से से दीवानी अधिकार प्राप्त किया।

पीरबहोर मुहल्ला, पटना-5

पटना विश्वविद्यालय कार्यालय एव विश्वविद्यालय पुस्तकालय का इलाका पीरबहोर मुहल्ले के नाम से कुछ दिनों पहले तक जाना जाता था और इस मुहल्ले से लोग आज भी अपरिचित नहीं हैं। इस मुहल्ले का नाम संत दाता पीरबहोर के नाम पर पड़ा। इनका मजार आज भी यहाँ के दाता मार्केट से सटे स्थित है। संत दाता पीरबहोर शाह अरजान के समकालीन थे। इस मुहल्ले में व्हिलर सिनेट हॉल के पास एक थाना अंग्रेजी काल में था जो "पीरबहोर" के नाम से जाना जाता है। यह थाना आज पटना के सब्जीबाग रोड के उत्तर में स्थित है और नाम नहीं बदला है।

बादशाही गंज, पटना-5

पटना साइन्स कॉलेज और उसके पास का क्षेत्र बादशाही गंज के नाम से मशहूर था। इस क्षेत्र में औरंगजेब का पोता फरुंखसियर आया था और उसी को खुश करने के लिए इस मुहल्ले का नाम बादशाही गंज रखा गया। उसका राज्यारोहण नहीं हुआ था। इसी मुहल्ले में ठठेरों को वस्ती थी। साइन्स कॉलेज जब बना तो ठठेरों का नया मुहल्ला आज ठठेरी बाजार मशहूर है।

त्रिपोलिया, पटना-7

पटना सिटी में स्थित **त्रिपोलिया** (तीन पोल या रास्ते) नामक मुहल्ला तीरपोलया का **अपभ्रंश है।** तीरपोलिया का अर्थ 'तीन फाटक' है। मुगलकाल में यह एक ऐसा बाजार था जिसमें आने-जाने के लिए तीन बड़े द्वार या रास्ते थे।

मीर शिकार टोह, पटना-7

त्रिपोलिया अस्पताल के पास स्थित मुहल्ले में मुगलकाल में चिड़िया मार रहते जो दिन-रात चिड़िया के शिकार की तलाश या टोह में लगे रहते थे। उनके ही कारण इस मुहल्ले का नाम मीर शिकार टोह पड़ा।

लोहानीपुर, पटना

जिस मुहल्ले को आज **लोहानीपुर** के नाम से जानते उसका नाम पहले नुहानीपुर था। इसी मुहल्ले में बिहार के **दीवान** नवाब मीर कासीम जन्मे थे।

गुलजारबाग, पटना सिटी

आधुनिक लोहानीपुर मुहल्ले में जन्मे बिहार के **दीवान** नवाब मीर कासीम के भाई गुलजार अली ने जिस क्षेत्र में एक बड़ा और सुन्दर बाग-बगीचा लगाया वह उन्हीं के नाम पर **गुलजारबाग** मुहल्ला कहलाया।

छज्जू बाग पटना-3

पटना गाँधी मैदान के **पश्चिम-दक्षिण** में स्थित छज्जू बाग मुहल्ला छज्जू माली के नाम पर पड़ा। वह एक विशाल बाग-बगीचे का देखभाल किया करता था। इस बगीचे का प्रमुख फल आम था जो प्रतिवर्ष अलीवर्दी और सिराजुद्दौला को भेजे जाते। इस मुहल्ले में स्थित उसका मकबरा "छज्जू शाह का मकबरा" के नाम से जाना जाता है।

खजांची रोड, पटना

पटना कॉलेज और खुदाबख्श लाइब्रेरी के बीच के उत्तर से जो सड़क जाती उसे **खजांची रोड** कहते हैं। 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण और 20वीं शताब्दी के प्रथम चरण में सरकार को व्याज पर कर देने वाले धनी-धनी व्यक्ति रहते थे जिन्हें खजांची बाबू भी कहा जाता था। इन्हीं लोगों के कारण इस रोड का नाम खजांची रोड पड़ा। सरकार को

कर्ज देने वाले ऐसे धनी व्यक्तियों में से एक परिवार डा०पी० गुप्ता का था जो बेगूसराय के बाद पटना में अपना पेशा चलाते हैं। उनकी पत्नी हाईकोर्ट में वकील हैं और एक बेटा ए० एन० सिन्हा रिसर्च इन्स्टीच्यूट में कार्यरत हैं।

पाटलिपुत्र - अजातशत्रु का लड़का उदयन या उदयभद्र मगध की राजधानी राजगृह से हटाकर पाटलिपुत्र ले आया। तब से पाटलिपुत्र एक प्रसिद्ध नगर हो गया। इसके नामकरण के संबंध में कहा जाता है कि यह शब्द पाटल नामक पेड़ से बना है। चीनी यात्री व्हेनत्सांग के अनुसार पाटलि का पुत्र ने जिस स्थान को बसाया वह आरम्भ में पाटलिग्राम और बाद में पाटलिपुत्र कहलाने लगा। किसी पाटल के पेड़ के नीचे देवी की स्थापना करने के बाद यह स्थान पाटन देवी के नाम से प्रसिद्ध हो गया। लगभग 700 ई० से 1200 ई० तक पटना के बारे में ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता है। शेरशाह के समय से यह पटना और अजीमाबाद के नाम से मशहूर रहा। शेरशाह के बाद औरंगजेब का पोता अजीम के नाम पर 1702-03 ई० में इसका नाम पुनः अजीमाबाद हो गया। अंग्रेजों के काल में यह स्थान पाटन से पटना या पट्टन अर्थात व्यापार का केन्द्र हो गया और बाद में चलकर पटना के नाम से जाना जाने लगा।

पटना सिटी

यह मुसलमानी काल का बसा हुआ शहर है। अजीमुश्शान ने इस शहर का नाम अपने नाम पर अजीमाबाद रखा था। यह शहर चारों ओर से घिरा था। इसमें दो मुख्य दरवाजे थे—पूरब दरवाजा और पश्चिम दरवाजा। इन दरवाजों के चिह्न अपने स्थान पर अब भी देखने में आते हैं।

ननमुहिया

18 वीं शदी में नन्हेंमियाँ के नाम पर जिस स्थान का नामकरण हुआ उसे ननमुहियाँ कहा जाता है जो पटना सिटी के क्षेत्र में पड़ता है।

मखानिया कुआँ

पटना अस्पताल के पास स्थित इस सड़क के मोड़ पर कुआँ था जहाँ एक व्यक्ति प्रतिदिन मक्खन बेचा करता था। अतः मक्खन वाला कुआं का अपभ्रंश हो मखनिया कुआं हो गया।

आर्य कुमार रोड, पटना

आर्य समाज के ऑफिस होने के कारण यह इलाका आर्य कुमार रोड के नाम से जाना जाता है ।

मछुआ टोली, पटना

आर्य कुमार रोड के सटे उत्तर में स्थित मछुआरों की बस्ती वाला मुहल्ला मछुआ टोली के नाम से जाना जाता है। आज इस क्षेत्र में मछली का बड़ा खुदरा बाजार है। इन मछुआरों को गंगा नदी और मछुआ टोली के दक्षिण में स्थित आधुनिक दरियापुर गोला में बरसात के मौसम में काफी मछली प्राप्त हो जाता था ।

नया टोला, पटना

सरकारी नौकरों एवं अनेक पैसेवालों ने आधुनिक नया टोला में मकान बनवाया। 1881 में पी० सी० राय, जो प्रांतीय लोक सेवा के सदस्य थे, ने नया टोला में अपना मकान बनवाया। प्रसिद्ध हामियोपथ डा० परेशनाथ चटर्जी ने भी अपना घर इसी मुहल्ले में बनवाया। प्रसिद्ध अधिवक्ता गुरु प्रसाद सेन, जो पत्रकार और सामाजिक कार्यकर्त्ता भी थे, ने अपना घर पा० एन० ऐंग्लों संस्कृत स्कूल के सामने बनवाया। आजकल इस मकान में भूतपूर्व न्यायाधीश कुलवन्त सहाय का परिवार रहता है।

दोरुखी गली, पटना

नवाबों और अंग्रेजों के कारण 18 वीं शताब्दी में मुरादपुर का व्यापारिक महत्त्व भी बढ़ा। पटना से सटे स्थानों से अच्छी खासी संख्या में लोग पश्चिमी पटना में बस गए। 1900 ई० के आसपास पहले बाकरगंज और बाद में मुरादपुर के इलाके में सोने चाँदी की अनेक दुकानें खुलीं। आभूषण बनाने वाले कारीगरों की संख्या में वृद्धि हुई। पटना अस्पताल में टी० बी० सेन्टर भवन के सामने दक्षिण की ओर जाने वाली दोरुखी गली में कारीगरों की आबादी बढ़ी। इस गली में दो-रुख अर्थात् दो मुँह है। पाली भाषा में रूख का अर्थ पेड़ और उर्दू में मुँह होता है। अत: दो रूख वाली गली के कारण इस गली का नाम दो रूखी गली पड़ा। उर्दू नाम होने से कह सकते है कि इस गली में मुसलमानों की प्रभावशाली संख्या थी।

ठठेरी मुहल्ला, महेन्द्रू, पटना-6

पटना में जिन मुहल्लों का नाम व्यक्ति विशेष और भौगोलिक बनावट के आधार पर नहीं बल्कि पेशा के आधार पर पड़ा उनमें से एक मुहल्ला ठठेरी बाजार है। ताँबे एवं पीतल के बर्तन बनाने वाले सैकड़ों परिवारों के कारण इस मुहल्ले का नाम ठठेरी बाजार पड़ा।

इसी तरह महेन्द्रू, पटना-6 में स्थित **टिकीया टोली** मुहल्ला का नाम साबुन की टिकीया बनाये जाने वाले स्थापित कारखाने के नाम पर पड़ा। महेन्द्रू, पटना-6 का मुख्य मोड़ महेन्द्रू **रिक्शा** पड़ाव के नाम से मशहूर है क्योंकि खाली रिक्शा वहाँ हाल-हाल तक काफी संख्या में लगे रहते थे। यह मोड़ **महेन्द्रू पोस्ट ऑफिस** के नाम से जाना जाता, क्योंकि यहाँ एक बड़ा डाकघर है। इसी तरह **ठठेरी बाजार**, पटना-6 के सटे पूरब में स्थित मोड मुहल्लापुर भट्ठा के नाम से आज भी मशहूर है, जबकि कई वर्षों पूर्व ही यहाँ से शराब की भट्ठी सरकार ने हटा दी।

महेन्द्रू मुहल्ला पटना-6

आजकल पटना सिटी कोर्ट का अधिकृत क्षेत्र का अन्तिम पश्चिमी सीमा महेन्द्रू मुहल्ला है, जिसका नाम अशोक के भाई या पुत्र राजा महेन्द्र के नाम पर पड़ा।

दरियापुर गोला, पटना-4

आधुनिक राजेन्द्र नगर के उत्तर-पश्चिम और हथुआ मार्केट के दक्षिण में स्थित दरियापुर गोला काफी मशहूर मुहल्ला है। प्रसिद्ध इतिहासकार एवं भूतपूर्व विभागाध्यक्ष (इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय) प्रो० बी० पी० मजुमदार का निवास स्थान इसी मुहल्ले में है। पटना अशोक राजपथ से लगभग 10-15 फीट नीचे स्थित इस मुहल्ले में अनाजों की थोक दुकानें थीं। वर्षा के मौसम में इस इलाके में इतना पानी भर जाता की दरिया या समुद्र के समान दिखाई देता। इस क्षेत्र से एक बड़ा-सा नाला भी बहता था। दरियापुर गोला के दक्षिण-पुरब में स्थित आज का राजेन्द्र नगर मुहल्ला इसी बाढ़ के कारण बिल्कुल वीरान था।

अंग्रेजों के कारण सर्कुलर रोड, बोरिंग रोड, न्यु मार्केट, एक्जीबिसन रोड जैसे कुछ रोड के दोनों तरफ आबादी बढ़ी। बाहर से आए हुए अधिकारियों एवं सरकारी मेहमानों को ठहरने के लिए जहाँ डाकबंगला

बना वह इलाका **डाक बंगला चौक** कहलाया। अनेक उच्चाधिकारियों ने वीरान इलाके को आबाद कर उसका नाम पाटलिपुत्र रखा। प्रसिद्ध बंगालियों जैसे; ब्रजेन्द्र मोहन दास के नाम पर **बी० एम० दास रोड** और बिहारी लाल भट्टाचार्या के नाम पर **भट्टाचार्या रोड** का नाम पड़ा।

मुरादपुर, पटना 4

जहाँगीर कालीन बिहार के गवर्नर मिर्जा रूस्तम सफवी के पुत्र मिर्जा मुराद 17 वीं शताब्दी में एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। उनका मकबरा सरकारी बड़ा अस्पताल के अहाते में आज भी है। उनके सहयोग से जो मुहल्ला बसा वह **मुरादपुर** के नाम से जाना जाता है।

नौजर कटरा मुहल्ला, पटना सिटी

यह मुहल्ला पटना सिटी के एस० डी० ओ० कोर्ट के पास स्थित है। इस मुहल्ले का नाम नौजर नामक एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के नाम पर पड़ा। बिहार के गवर्नर रूस्तम सफवी के पुत्र मिर्जा मुराद के चचेरे भाई नौजर साहब ने इस इलाके में एक भवन निर्माण कराया।

कंकड़बाग, पटना

दक्षिणी पटना में स्थित आज एशिया का सबसे विशाल मुहल्ला कंकड़-बाग का इलाका बादशाह अकबर द्वारा ईरान के शाह तहमस्प के पुत्र को जागीर के रूप में प्रदान किया गया। पटना में इसी समय से एक अच्छी खासी संख्या ईरानियों एवं खुरासानियों की पायी जाने लगी। प्राचीन काल में इस क्षेत्र से होकर सम्भवतः सोन नदी बहती थी। लाल बालू वाली मिट्टी, कंकड़ और झाड़ियों के कारण यह इलाका कंकड़बाग के नाम से जाना जाने लगा।

गोलघर

पटना के गाँधी मैदान के उत्तर-पश्चिम में स्थित **गोलघर** एक अनोखा स्मारक है। इस विशाल रचना का आकार औंधे कप के समान है। 96 फीट ऊँचे इस भवन की दीवारें काफी मोटी और उपर से बन्द है। इसका निर्माण 1786 ई० में जॉन गारस्टो द्वारा अनाज गोदाम के रूप में किया गया। 1783 में पटना में भयंकर अकाल पड़ा और रोटी के अभाव में मरने वालों की संख्या असंख्य रही। भावी अकाल से सुरक्षा

के लिए अनाज का सरकारी स्टॉक पटना में रखने के लिए जो गोदाम बना वही गोलघर कहलाया। रुचिपूर्ण तथ्य यह है कि इसमें अनाज रखा कभी नहीं गया।

मिर्जा मुराद का मकबरा

मिर्जा मुराद एक भद्र पुरुष थे। उनके पिता मिर्जा रूस्तम सफवी जहाँगीर के शासनकाल (1605-27) में बिहार के अंतिम गवर्नर थे। सफवी साहब की शादी प्रसिद्ध मुगल व्यक्ति अब्दुर्रहीम खान-ए-खानान (1554-1627) की पुत्री से हुई थी। मिर्जा मुराद ने गंगा के किनारे एक भवन बनवाया और पटना में मृत्युपर्यन्त रहे। उनका मकबरा आज भी बड़ा अस्पताल के अहाते में स्थित है। इस अस्पताल से सटे मुहल्ला का नाम उन्हीं के नाम पर मुरादपुर पड़ा।

शाह अर्जान की दरगाह, सुल्तानगंज

शाह अर्जान बादशाह जहाँगीर का समकालीन और पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेश का निवासी था। दरगाह से सटे अभिलेख के अनुसार शाह अर्जान की मृत्यु 1618-19 में हुई।

पत्थर की मस्जिद, सुल्तानगंज

शाह अर्जान की दरगाह के उत्तर मुख्य सड़क के दायें मोड़ पर स्थित पत्थर की मस्जिद का निर्माण बादशाह औरंगजेब का पोता राजकुमार परवेज का सेनानायक मुहम्मद नजर खान खवेशगी नामक पठान द्वारा 1626-27 में किया गया।

पटनदेवी का मन्दिर, गुलजारबाग

1811 बुकानन बताते हैं, पटना में हिन्दुओं का एक मात्र प्रमुख धर्मस्थल बड़ी और छोटी पटनदेवी का मंदिरें थीं। छोटी पटनदेवी का निर्माण प्रांतीय गवर्नर (1587-94) राजा मानसिंह द्वारा किया गया। बुकानन के समय इस मंदिर का मुख्य पुजारी एक कन्नौजिया ब्राह्मण था जिसे मंदिर से काफी आय होती थी। आज का पटनदेवी मंदिर उस स्थान पर नहीं स्थित है जहाँ पहले यह था। जहाँ यह मंदिर आज है। वह भूमि औरंगजेब द्वारा दान दी गई थी। मंदिर के पास एक पाठशाला भी था।

पादरी की हवेली

(The Roman Catholic Charch)

पटना सिटी के ख्वाजा कलां थाना के पास मुख्य सड़क के किनारे स्थित इस ईसाई धर्म स्थल का निर्माण 18 वीं शताब्दी में कपुचीन मिशनरी द्वारा किया गया ताकि इस मत का प्रचार तिब्बत तक हो सके। आमोनियम तथा कोरिंथियन शैली में 1779 ई० में तैयार इस भवन का नक्शा एक वेनेशियन भवन निर्माणकर्त्ता ने की। लेटिन में उत्कीर्ण अभिलेखों और 1782 ई० में नेपाल नरेश राजा पृथ्वी नारायण का पुत्र राजा बहादुर शाह द्वारा दी गई धातु घंटियों से अलंकृत इस धर्मस्थल को आज भी देखा जा सकता है। इस भवन में होली फेमिली मिशन हॉस्पीटल था जो अब कुर्जी में है।

झाउगंज पटना सिटी

असफउद्दौला का प्रमुख अधिकारी झाओलाल को लखनऊ छोड़ना पड़ा और 1807 में वह जहां बसा वह मुहल्ला आज झाओगंज के नाम से जाना जाता है। झाओलाल सक्सेना कायस्थ था और एक धनी मुस्लिम महिला से उसने शादी की थी।

टकसाल, ख्वाजा कलां घाट, पटना सिटी

पटना सिटी में गंगानदी के किनारे यह छोटा सा मुहल्ला आज भी स्थित है। इसी क्षेत्र में अकबर द्वारा एक टकसाल स्थापित किया गया जहां बाद में भी सिक्के ढाले जाते रहे। ईस्ट इन्डिया कम्पनी द्वारा स्वयं सिक्के ढाले जाने लगे तो पुराना टकसाल बन्द हो गया और इस टकसाल भवन को अहमद हुसैन खां नामक एक मुसलमान द्वारा खरीद लिया गया।

सादमान का मस्जिद, पटना

इन्जिनीयरिंग कॉलेज के फुटबॉल मैदान के दक्षिण पूर्व मुल्ला **सादमान का मस्जिद** देखा जा सकता है। मुल्ला सादमान के गुरु मौलाना चौक (भागलपुर) के मुल्ला शाहबाज थे। इस मस्जिद में राजकुमार फरुंखसियर नमाज पढ़ता और मुल्ला सादमान से दुआऐं मांगता था।

बाग-ए-मीर अफजल का कब्र, पटना

पटना साइन्स कॉलेज के सामने बाग-ए-मीर अफजल का कब्र स्थित है।

दाता पीर बहोर का कब्र

आधुनिक पटना यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी के सामने उत्तर में दाता पीर बहोर का मजार है। दाता पीर बहोर शाह अर्जान के समकालीन थे।

ईदगाह, पटना सिटी

पटन देवी मंदिर के पास बिहार के गवर्नर नवाब सैफ खां ने इस ईदगाह को 1628-29 में बनवाया। उनकी पत्नी की बड़ी बहन मुमताज महल बादशाह शाहजहाँ की बेगम थी। सैफ खां ने अपने नाम पर एक अरबी कॉलेज, एक तालाब एवं एक मस्जिद का निर्माण किया।

मिर्जा मासूम का मस्जिद, गुजरी पटना सिटी

इस मस्जिद का निर्माण मिर्जा मासूम ने 1616 ई० में की। इस मस्जिद में काले पत्थरों का प्रयोग हुआ है। यह काला पत्थर किसी मन्दिर से निकालकर लगाया गया था। यह मस्जिद गुजरी मुहल्ला में है जहाँ 18 वीं शताब्दी में अग्निकांड हुआ था।

हुसैनशाह का मस्जिद, पटना सिटी

यह मस्जिद 1489 ई० में अलाउद्दीन हुसैन शाह द्वारा बनवाया गया। इसी शासक ने बंगाल में हुसैनी राजवंश की स्थापना की। इस मस्जिद की स्थिति खराब होती गई और 1646 ई० में इसकी मरम्मत बेगू हज्जाम ने करायी।

बेगू हज्जाम का मस्जिद, पटना सिटी

ख्वाजा कलां घाट (आलमगंज) के पुरब में स्थित इस मस्जिद का निर्माण 17 वीं शताब्दी में बेगू हज्जाम ने की और यह मस्जिद आज बेगू-हज्जाम के नाम से जाना जाता है।

फकरुद्दुल्ला का मस्जिद, पटना सिटी

पटना सिटी चौक के पास स्थित मस्जिद का निर्माण फकरुद्दुल्ला ने की और यह फकरुद्दौला का मस्जिद के नाम से जाना जाता है। 1731 से 1736 ई० तक बिहार पर शासन करने वाला [illegible] का भाई फकरुद्दीन था।

1605 में हाजीतातार का मस्जिद, 1688 ई० में शाईस्ता खां का कटरा मस्जिद और 1736 में नजीर ख्वाजा अम्बेर का मस्जिद बना। फारस के शिलाखण्डों से अलंकृत वचुआ गंज मस्जिद का निर्माण शाईस्ता खां के एक नौकर ने की। शाईस्ता खां का बेटा बुजुर्ग उमीद खां जो 1683 से 1686 तक बिहार का गवर्नर रहा, द्वारा एक मस्जिद का निर्माण किया। पुरब दरवाजा के दक्षिण-पश्चिम में स्थित शेरशाह का

मस्जिद पटना सिटी का काफी पुराना और सबसे बड़ा मस्जिद है। 1934 ई० के भूकम्प में इसका अधिकांश हिस्सा क्षतिग्रस्त हो गया।[1]

माताखुदी लेन, महेन्द्रू पटना-800006

1850 ई० के आसपास आधुनिक माताखुदी लेन सुनसान इलाका था। यहाँ खेत ही खेत थे। धीरे-धीरे इस इलाके में मकान बनने लगे। 1900 ई० के आसपास आधुनिक गुल्बी घाट मुहल्ले में स्वास्थ्य विभाग था जहाँ कई आदमी चेचक का टीका देने के पदों पर काम करते थे। इनमें से चेचक का टीका लगाने वाले अधिकांश कर्मचारी जिस इलाके में रहने लगे उसका नाम उन्हीं लोगों के कारण **माताखुदी** पड़ गया। चेचक को "शीतला माता" आज भी कहते है जिससे सुरक्षा के लिए टीका दी जाती थी। बांह पर टीका इस तरह लगाया जाता जैसे किसी नुकीले चीज से बांह पर खोद दिया हो। 1910 ई० के आसपास किसी शराबी ने सात पिण्डों को एक साथ रख एक नीम का पेड़ भी लगा दिया। यह शक्ति मंदिर और पेड़ आज भी है। इसी गली में नन्दा चौबे नामक एक निःसंतान ब्राह्मण रहते जो मरने से पूर्व अपने घर में अपने नाम पर एक स्कूल—**नन्दा संस्कृत पाठशाला** 1931-32 में खोला जिसका उद्घाटन तत्कालीन संस्कृत विद् और पटना के कमिश्नर श्री कॉड बोल साहब ने किया। माताखुदी के साथ अंग्रेजी शब्द 'लेन' इसी रास्ता से जुड़ गया।

रामसहाय लेन, महेन्द्रू, पटना-6

आधुनिक पटना लॉ कॉलेज के सटे पश्चिम में स्थित माताखुदी लेन के पश्चिम में स्थित मुहल्ला **राम सहाय लेन** के नाम से जाना जाता है। राम सहाय नामक एक धनी एवं प्रतिष्ठित ग्वाला के नाम पर इस मुहल्ले का नाम रामसहाय लेन 1900 ई० के आसपास पड़ा।

सुमति पथ, रानीघाट, पटना

रानीघाट में स्थित लॉ कॉलेज के पूरब में मुख्य मार्ग के उत्तर में गंगा नदी के घाट पर जाने वाला मार्ग **सुमति पथ** कहलाता है। शिव प्रसाद पाण्डेय सुमति (1876-1938) के नाम पर इस मार्ग का नाम सुमति पड़ा। अगर वे अंग्रेजी के विद्वान होते तो शायद इस मार्ग का नाम सुमति

---

1. उपर्युक्त सारे स्मारकों की जानकारी प्रसिद्ध इतिहासकार प्रोफेसर सैयद हसन असकरी का लेख "द सिटी ऑफ पटना-एटीमोलॉजी प्लेस नेम्स" (पटना थ्रू द एजेज, पृ० 53-7) और प्रोफेसर कयामुद्दीन अहमद का लेख "पटना-अजीमाबाद (1540-1765) ए स्केच" (पटना थ्रू द एजेज पृ० 71-87) से ली गई।

रोड पड़ता लेकिन वे चूंकि हिन्दी के विद्वान थे इसलिए पथ शब्द का प्रयोग किया गया। शिव प्रसाद जी इसी गली में मार्च, 1876 में जन्मे थे। पाटलिपुत्र नामक साप्ताहिक का वे सह सम्पादक और 1920 में शिक्षा का सम्पादक रहे। 1921 ई० में वे खड्गविलास प्रेस में प्रधान पंडित के रूप में कार्यरत रहे। अनेक साहित्यिक ग्रंथों के लेखक शिव प्रसाद पाण्डेय' 'सुमति' की मृत्यु 1938 में हुई। जिस गली में उनका जन्म हुआ उसका नाम उनके मरने के वर्षों बाद पड़ा।

लंगर टोली पटना।

आधुनिक मछुआ टोली मुहल्ला के सटे पश्चिम में स्थित इलाके में बरसात के दिनों में इतना पानी लगता कि नाव चलने लगते। लंगर वाला नाव के कारण आज वैसा बाढ़ नहीं आने के बावजूद यह मुहल्ला लंगरलोटी कहलाया। पानी लगने के कारण इस इलाके में मच्छलियाँ पायी जाती और मछुआरों ने इसी के आसपास जहाँ रहना शुरू किया, वह मुहल्ला आज भी मछुआ टोली के नाम से जाना जाता है।

बोरिंग रोड, पटना

पटना के पूर्वोत्तर में स्थित बोरिंग रोड मुहल्ले का नाम उस बोरिंग मशीन के नाम पर पड़ा जो आज भी ए० एन० कॉलेज के सटे उत्तर में देखा जा सकता है।

बोरिंग कनाल रोड, पटना

वर्तमान मुख्यमंत्री श्री सत्येन्द्र नारायण सिंह के निवास स्थान से उत्तर में बहुत बड़ा गड्ढा था और उसके दोनों तरफ खेत तथा बोरिंग कनाल थे। इस इलाके में बड़े-बड़े लोग बसने लगे। प्रथम मकान कम्यूनिस्ट पार्टी के चन्द्रशेखर बाबू का बना। धीरे-धीरे सारा इलाका मकानों से भर गया और बोरिंग कनाल रोड के नाम से आज जाना जाता है।

पाटलिपुत्र मुहल्ला पटना

पटना के बोरिंग रोड चौराहा से उत्तर ए० एन० कॉलेज से आगे बड़े-बड़े प्रशासनिक अधिकारियों के मकान 1960 ई० के आसपास बनने लगे। इस मुहल्ले की प्राचीनता या आधुनिकता दर्शाने के लिए इसका नाम पाटलिपुत्र रखा गया। 1950-60 के आसपास इस इलाके में 500 रुपये में एक कट्ठा जमीन कोई आसानी से नहीं बेच पाता था।

कम्पनीबाग

दिल्ली के "फूलोंवालों की सैर" के समान पटना में 1850 में और इसके पूर्व प्रतिवर्ष सावन का महिना में "सोमारी मेला" प्रति सोमवार को लगता था। आज भी लगता है। 19 वीं शताब्दी में यह बांकीपुर, पटना के कम्पनीबाग में लगता था। कम्पनीबाग मुहल्ला ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा बसाया गया था। यहाँ आम के सैकड़ों और नीम के बीसों पेड़ थे।

यह जगह आज बिल्कुल बदल गया है। इसी बाग का बड़ा हिस्सा कटकर अदालत का कचहरी बन गया और पुरब तथा पश्चिम में दूर-दूर तक जो इमारतें नजर आतीं वह पहले कम्पनी बाग का हिस्सा थीं। इसी कम्पनी बाग से सटे एक मंदिर है जहाँ 19 वीं शताब्दी के प्रथम चरण में अच्छे-अच्छे गाने वाले और गानेवालियाँ आती थीं। रातभर यहाँ गाने का फैलाव गंगा की लहरों के साथ उमड़ता रहता था। रात में दुकानें लगी रहतीं और रोशनी के लिये कंदिलें या फानूस लटके रहते। दुकानें तीरपाल से ढंकी रहतीं। बरसात में भी मनचलों की भीड़ रहती। मलमास में सोमारी मेला दो माह लगातार चलता।

बाबा भीखम दास

पटना के आधुनिक ठाकुरगंज मुहल्ला में स्थित भीखम दास की ठाकुरवाड़ी काफी मशहूर है। 19वीं शताब्दी के मध्य इस ठाकुरवाड़ी के बगल में स्थित मकान में यात्री ठहरते और संत रहते थे 1850 ई० के आसपास एक हिन्दू संत यहाँ के खाली जमीन में ठहरे। आजकल की तरह यह रौनक वाला मुहल्ला नहीं था। दोनों तरफ सुनसान मुहल्ले थे। यहाँ बरसात में पानी जमा हो जाता था, अतः लोग मकान बनाने के लिये तैयार नहीं होते थे। इसी सुनसान इलाके में बाबा भीखम दास ने अपना आसन जमा दिया और ईश्वर में लीन हो गए। ईश्वर की याद से जब समय बचता उसमें लोगों को शिक्षा दिया करते थे। बाबा भीखम दास धन दौलत और झूठी मान प्रतिष्ठा से दूर रहे और उनकी प्रतिष्ठा काफी बढ़ी। भक्तों की संख्या बढ़ी। चढ़ावे आने लगे। बाबा भीखमदास ये सारी वस्तुएं गरीबों में बाँट देते। धीरे-धीरे जहाँ पर उनका आसन था वहाँ चारों तरफ झोपड़े बनने लगे जिनमें यात्रियों के अलावे कुछ संत-साधु भी आकर रहने और अपने को बाबा भीखमदास का चेला या शिष्य कहने लगे। सरकारी अधिकारी, वकील, डाक्टर आदि काफी संख्या में पहुँचते। हिन्दू-मुसलमान में उनके यहाँ कोई भेदभाव नहीं था और ऐसा सवाल उठाने वाला बाबा भीखम दास के यहाँ पापी समझा जाता।

भीखम का लंगरखाना चलता था। चिथड़े में लिपटा सफेद दाढ़ी-मोंछ वाला एक बुढ़ा भी लंगर में खाना खा रहा था। अचानक उसने कहा—अल्लाह ! तेरा लाख-लाख शुक्र है। तीन दिनों के बाद उसे खाना मिला था। इस मुसलमान का विरोध होने लगा और सभी हिन्दू चले गए। बाहर आकर भीखमदास को सारी बातें मालूम हुई और काफी नाराज हुए। मुस्लिम फकीर से उन्होंने स्वयं माफी मांगी और कहा—"ये लोग भगवान का नाम लेते लेकिन भगवान की तरह प्यार नहीं करते। दूसरे दिन से भीखमदास के पास वही आते जिनमें जात-पात का भेदभाव नहीं होता। स्वभाव से दयालु और जबान से काफी मुलायम थे भीखम दास।

*

संदर्भ सूची

1. जे० डब्ल्यू० मैक्रिण्डल, एंसेंट इण्डिया एज डिसक्राइब्ड बाय मेगास्थनीज एण्ड एर्रियन, कलकत्ता, 1960
2. महाभाष्य (पातंजलि)
3. युगपुराण
4. फाह्यान का यात्रा विवरण
5. टी० वाटर्स, ऑन युवान चांग
6. दीघनिकाय
7. पाटलिपुत्र एक्सावेशंस, 1955-56, पटना, 1970.
8. रिपोर्ट ऑन कुम्हरार एक्सावेशंस, 1951-55, पटना, 1959
9. ए० कनिंघम, एंसेंट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया
10. मोतीचन्द्र, सार्थवाह, पटना
11. अर्थशास्त्र (कौटिल्य)
12. प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑफ द आर्कलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, 1913-14, 1914-15, 1915-16
13. राम शरण शर्मा, "डिके ऑफ गंजेटिक टाउन्स इन द गुप्ता एण्ड पोस्ट-गुप्ता टाइम्स", जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, गोल्डेन जुब्ली वॉल्युम
14. राजेश्वर प्रसाद सिंह, द डिक्लाइन ऑफ पाटलिपुत्र विद स्पेशल रिफरेंस टू द ज्योग्राफिकल फैक्टर्स, प्रॉसिडिंग्स ऑफ इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, अलीगढ़, 1975
15. डी० आर० पाटिल, द एंटिक्वेरियन-रिमेन्स इन बिहार, पटना, 1963
16. मैक्रिण्डल, एंसेंट इण्डिया एज डिस्क्राइब्ड बाय टोलमी, कलकत्ता, 1927
17. मैक्रिण्डल, एंसेंट इण्डिया एज डिस्क्राइब्ड बाय क्लासिकल लिटरेचर, वेस्टमिनिस्टर, 1971
18. मुद्राराक्षस (विशाखदत्त)

19. राहुल सांकृत्यायन, बुद्धचर्या, बनारस, 1952

20. राधाकुमुद मुकर्जी, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन शिपिंग, इलाहाबाद, 1962

21. कम्प्रिहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ बिहार, (कई जिल्दों में), पटना

22. कयामुद्दीन अहमद, कॉर्पस ऑफ अरेबीक एण्ड पर्सियन इन्सक्रिप्शंस ऑफ बिहार, पटना, 1973

23. पटना डिस्ट्रिक्ट गजेटीयर

24. पटना यूनिवर्सिटी सील्वर जुबली सवेनियर वाल्युम, पटना, 19·4

25. जॉन हल्टन, बिहार : द हर्ट ऑफ इण्डिया, बम्बई, 1942

26. रिपोर्ट आन द प्रोग्रेस ऑफ एजुकेशन इन बिहार एण्ड उड़ीसा, 1923-24, 24-25, 25-26, 26-27

27. के० के० दत्त, अनपब्लिश्ड कारेसपोंडेंस ऑफ जज-मजिस्ट्रेट ऑफ पटना

28. आर० आर० दिवाकर, बिहार थ्रू द एजेस

29. के० के० दत्ता, फ्रिडम मूवमेंट इन बिहार (तीन जिल्दों में)

30. एफ० बुकानन, पटना-गयारिपोर्ट

———

डॉ० ओम् प्रकाश प्रसाद

जन्म : 15 दिसम्बर 1950 (सिवान)

शिक्षा : एम. ए., एल-एल. बी.,
पी-एच. डी. (पटना)

संप्रति : 1980 ई० से पटना विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर इतिहास विभाग में अध्यापन कार्य ।

लेखक की कुछ प्रमुख कृतियाँ :

(1) Decay and Revival of Urban Centres in Medieval South India (C. A. D. 600-1200)
(2) "Glimpes of Town-planning in Pataliputra (B. C. 400-600 A. D.)." Patna Through the Ages (ed.) Q. Ahmed.
(3) "Trade in the Growth of Thwns : A Case Study of Karnataka—C. A. D. 600–1200," Essays in Ancient Indian Economic History (ed.) B. D. Chattopadhyaya.
(4) औरंगजेब-एक नई दृष्टि
(5) प्राचीन भारत
(6) रूस का इतिहास